मनुष्य

चलता फिरता पेड़ नहीं है

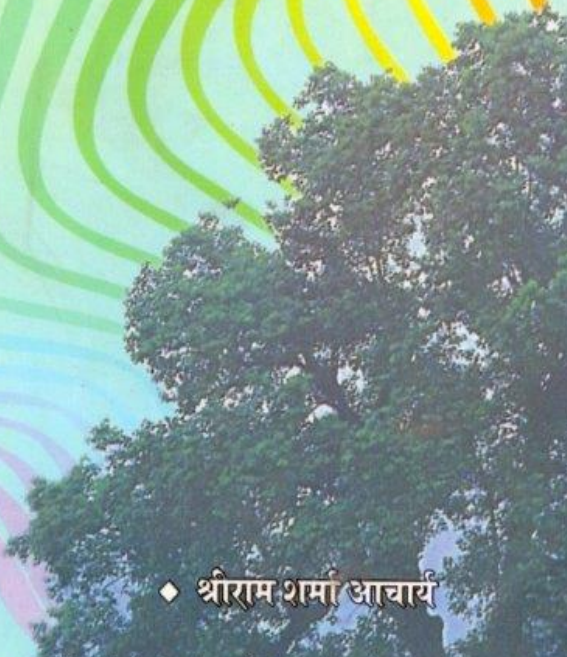

◆ श्रीराम शर्मा आचार्य

मनुष्य चलता फिरता पेड़ नहीं है

लेखक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

२०१० मूल्य : २४.०० रुपये

विषय-सूची

१. जगत् मात्र जड़ तत्त्वों का उपादान नहीं	३
२. आत्मा का अस्तित्व एक गंभीर प्रश्न	२५
३. आत्मा-वैज्ञानिक प्रयोगशाला में	५४
४. आत्मा का अस्तित्व अमान्य न किया जाए	६८
५. आत्मा की अमरता को जानें और प्राप्त करें	८४
६. स्थूल से प्यार—सूक्ष्म का तिरस्कार क्यों ?	९६
७. अपने को जानें, भव-बंधनों से छूटें	११७

*

इसे एक मनोवैज्ञानिक चक्रव्यूह ही कहना चाहिए कि हम अपने को भूल बैठे हैं। अपने आपको अर्थात् आत्मा को। शरीर प्रत्यक्ष है, आत्मा अप्रत्यक्ष। चमड़े से बनी आँखें और मज्जा-तंतुओं से बना मस्तिष्क, केवल अपने स्तर के शरीर और मन को ही देख-समझ पाता है। जब तक चेतना-स्तर इतने तक सीमित रहेगा, तब तक शरीर और मन की सुख-सुविधाओं की बात ही सोची जाती रहेगी। उससे आगे बढ़कर तथ्य पर गंभीरतापूर्वक विचार कर सकना संभव ही न होगा कि हमारी आत्मा का स्वरूप एवं लक्ष्य क्या है और आंतरिक प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए क्या किया जाना चाहिए ? क्या किया जा सकता है ?

*

जगत् मात्र जड़ तत्त्वों का उपादान नहीं

पिछली दशाब्दियों में विज्ञानवेत्ता समस्त जड़-चेतन जगत् को पदार्थ विनिर्मित मानते रहे हैं और चेतना को तत्त्वगत एवं रासायनिक सम्मिश्रण का परिणाम बताते रहे हैं। उनकी दृष्टि में आत्मा नाम की स्वतंत्र सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं। वृक्ष-वनस्पतियों की तरह ही मनुष्य या पशु-पक्षी, कीट-पतंग भी हैं। छोटे स्तर के अविकसित प्राणियों में तथा मनुष्यों में जो विचार शक्ति पाई जाती है, वह उनके मस्तिष्क अवयव में होने वाली एक विशेष प्रकार की हल-चल भर है; किंतु यह मान्यता समय के साथ-साथ धुँधली पड़ती चली आई है और अब इतने अधिक प्रमाण इकट्ठे हो गये हैं कि आत्मिक चेतना का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार किया जा सके।

'अकस्मात्' वादी नास्तिकवाद का कथन है कि यह संसार अकस्मात् पैदा हुआ है और बिना किसी नियंत्रण के स्वसंचालित रूप से समस्त गतिविधियाँ अनायास ही चल पड़ी हैं और चल रही हैं।

कहा जाता है कि जिस प्रकार सराय में पहुँचने पर अकस्मात् ही कोई मित्र मिल जाता है और उसके मिलते ही नमस्कार, मुस्कान, कुशल प्रश्न, उपहार आदि के आदान-प्रदान का क्रम चल पड़ता है; ठीक इसी तरह इस संसार का आविर्भाव तथा क्रम निर्धारण स्वयमेव, निरुद्देश्य चल पड़ा है।

किंतु यह 'अकस्मात्' वाद कहने में जितना सरल है, उतना आसानी से सिद्ध नहीं किया जा सकता। सृष्टि का हर जीवाणु-परमाणु एक सुव्यवस्थित क्रिया-प्रक्रिया के अनुसार चल रहा है।

इतना ही नहीं, उसके पीछे भावी परिणामों की सूझ-बूझ भी है और परिस्थिति को देखते हुए अपनी गतिविधियों में हेर-फेर कर लेने की दूरदर्शिता भी है। इन तथ्यों पर विचार करने पर जड़ समझी जाने वाली प्रकृति में चेतना का बहुमुखी आधार विद्यमान सिद्ध होता है।

स्पेन का दार्शनिक इब्नबाजा कहता था—जगत् की रचना परिछिन्न गतियुक्त पिंड-परमाणुओं से हुई है। वे कण न तो निश्चेष्ट हैं और न मृतक। उनमें क्रिया भी विद्यमान है और चेतना भी। वह स्थिति अस्त-व्यस्त भी नहीं वरन् पूर्णतया क्रमबद्ध भी है। इस क्रम निर्धारण और नियामक सत्ता को कोई भी अपने समीपतम क्षेत्र में प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है। इस प्रमाण को प्रमाणित करने की किसे क्या आवश्यकता पड़ेगी ?

शरीर से पृथक् आत्मा की अपनी स्वतंत्र सत्ता होने के संबंध में वैज्ञानिक क्षेत्रों में कितने ही अन्वेषण कार्य हुए हैं। इन्हीं प्रयोगों में एक प्रयास मनोविज्ञान अनुसंधान समिति का है। उस संस्था ने अपने शोध परिणाम **'दी ह्यूमन परसनैलिटी एंड इट्स सरवाइवल ऑफ बॉडीली डैथ'** नामक पुस्तक में प्रकाशित किये हैं। इस पुस्तक में कितने ही उदाहरण ऐसे प्रस्तुत किये हैं, जिनमें शरीर से भिन्न आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध होता है। कुछ उदाहरण विशेष घटनाओं के पश्चात् व्यक्तियों की जीवन भर की संचित स्मृति पूर्णतया नष्ट होकर एक अजनबी व्यक्तित्व उस शरीर में काम करने लगने के हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि शरीर पर आधिपत्य रखने वाली आत्मा को धकेलकर उस स्थान पर कोई दूसरी आत्मा कब्जा कर सकती है और जब तक चाहे वहाँ रह सकती है। इन घटनाओं में कुछ ऐसी भी हैं, जिनमें आधिपत्य जमाने वाली आत्मा ने अपना कब्जा छोड़कर पुरानी आत्मा को उस शरीर में वापस लौट आने का अवसर दिया।

उपरोक्त पुस्तक में ऐसे छोटे बच्चों के उद्धरण भी दिये हैं, जो गणित, संगीत, ज्यामिति, चित्रकला आदि में इतना पारंगत थे जितने उस विषय के प्राध्यापक भी नहीं होते। बिना शिक्षा-व्यवस्था के पाँच-छह वर्ष जितनी छोटी आयु में ही इस प्रकार का असाधारण ज्ञान होना, इसी एक आधार पर संभव होता है कि किसी आत्मा को अपने पूर्व जन्म की संचित ज्ञान सामग्री उपलब्ध हो। यह पूर्व जन्म की सिद्धि आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

स्वीडन देश के स्टॉकहोम नगर में एक भविष्य सूचना का विवरण **डेजन्स नेहटर** पत्र में कुछ समय पूर्व प्रकाशित हुआ था, जो अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। बात यह थी कि हेन्स क्रेजर नामक एक व्यक्ति ने अपने कमरे में बैठे एक दिवास्वप्न देखा कि चौथी मंजिल पर एक अधेड़ व्यक्ति ने एक नवयुवती की चाकू मारकर हत्या कर दी। हेन्स को वह घटना इतनी सत्य प्रतीत हुई कि वह अपने को रोक न सका और सीधा पुलिस दफ्तर में रिपोर्ट करने पहुँचा। पुलिस बताये गये कक्ष में पहुँची तो पाया कि वह कमरा मुद्दतों से बंद था और उसमें थोड़ा-सा फर्नीचर मात्र ही रखा था। झूठी रिपोर्ट करने के अभियोग में हेन्स को पागलखाने भेजा गया। जाँच पूरी भी न हो पाई थी कि एक सप्ताह के भीतर ही वह रिपोर्ट अक्षरशः सत्य हो गई। किसी व्यक्ति ने उस मकान को किराये पर लिया और साथ वाली औरत की चाकू से हत्या कर दी। चीख पुकार के बीच हत्यारा पकड़ा गया। मृत युवती और आक्रमणकारी अधेड़ का हुलिया बिल्कुल वैसा ही था जैसा कि रिपोर्ट में उल्लेख किया गया था। इस घटना पर टिप्पणी करते हुए उपरोक्त अखबार ने टिप्पणी की कि इस संसार में बहुत कुछ पूर्व व्यवस्थित क्रम से हो रहा है और उनकी जानकारी आत्मा की प्रखर चेतना समय से पूर्व भी जान सकती है।

पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) के प्राचार्य लेंबरटन एक वैज्ञानिक गुत्थी को सुलझाने में वर्षों से लगे थे। एक रात को उन्होंने स्वप्न देखा कि सामने की बड़ी दीवार पर उनके प्रश्न का उत्तर चमकदार अक्षरों में लिखा है। जागने पर उन्हें अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि इतना सही उत्तर किस प्रकार उन्हें स्वप्न में प्राप्त हो गया।

रॉयल सोसाइटी के अध्यक्ष सर ऑलीवर लॉज तथा सर विलियम क्रुक्स, सर आर्थर कानन डायल, डॉ० मेयर्स आदि वैज्ञानिक विद्वानों ने अपने अनुसंधानों द्वारा निकले हुए ऐसे निष्कर्षों को सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में छपाया था, जिनसे मृत्यु के उपरांत पुनर्जन्म के प्रमाण मिलते हैं, साथ ही यह भी सिद्ध होता है मरण और नवीन जन्म के बीच कतिपय मनुष्यों को सूक्ष्म शरीर धारण करके प्रेत रूप में भी रहना पड़ता है।

सर ऑलीवर लॉज की मरणोत्तर जीवन पर प्रकाश डालने वाली 'केमंड मेंथून', 'विज्ञान और मानव विकास' तथा 'मैं आत्मा के अमरत्व में क्यों विश्वास करता हूँ ?' नामक तीन पुस्तकों में विस्तृत प्रकाश डाला है। इसी प्रकार उच्चकोटि के कितने ही विज्ञानवेत्ताओं ने इसी प्रकार की पुष्टि की है। ऐसे विद्वानों में एलफ्रेड रसल, वैलेस सर विलयम क्रुक्स, सर एडवर्ड मार्शल के नाम अधिक प्रख्यात हैं।

मनोविज्ञानी जे० डब्ल्यू० ड्रेवर ने अपनी पुस्तक **'दी कनफ्लिक्ट बिटवीन रिलीजन एंड साइन्स'** पुस्तक में प्राचीन यूनान की मान्यताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—"रोम निवासियों की यह मान्यता रही है कि आत्मा का सूक्ष्म आकार स्थूल शरीर जैसा होता है और शरीर की स्थिति के साथ-साथ आत्मा की स्थिति में भी अंतर आता है।" यह प्रतिपादन भारतीय अध्यात्म के साथ मेल नहीं खाता, तो भी इतना तो स्पष्ट है कि

शरीर से भिन्न आत्मा की सत्ता को न केवल भारतीय तत्त्वज्ञान ही ने माना है, वरन् संसार के अन्य भागों में भी उस सिद्धांत को मान्यता प्राप्त रही है।

भविष्यवाणियों के इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए यह तथ्य स्पष्ट हो चला है कि किन्हीं व्यक्तियों में पूर्वाभास की क्षमता आश्चर्यजनक रूप से पाई जाती है। उनकी भविष्यवाणियाँ असंदिग्ध रूप से समय पर सत्य सिद्ध होती हैं। इसका कारण क्या है ? और इस शक्ति को प्राप्त कर सकना हर किसी के लिए संभव है या नहीं ? है तो किस प्रकार ? आदि प्रश्नों के उत्तर आज उपलब्ध नहीं हैं; फिर भी इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि संसार में असंदिग्ध भविष्यवाणियाँ कर सकने वाले लोग भी हुए हैं। यह तथ्य भी जड़ जगत् में किसी अलौकिक सत्ता का अस्तित्व सिद्ध करने का कम महत्त्वपूर्ण आधार नहीं है।

महायुद्ध छिड़ने से पहले की बात है, लंदन के स्पेन दूतावास में एक भोज दिया गया, जिसमें ब्रिटेन के तत्कालीन विदेश मंत्री लार्ड हैली फैक्स सम्मिलित थे। आमंत्रित अतिथियों में भविष्य-वक्ता डी० ह्वोल भी थे। वे संयोग से विदेश मंत्री महोदय की बगल में ही बैठे थे। उन्होंने चुपके से भावी महायुद्ध और उसके संबंध में हिटलर की पूर्व योजनाओं की जानकारी बताने का अनुरोध किया। उसके उत्तर में ह्वोल ने कई ऐसी बातें बताईं, जो अप्रत्याशित थीं। हैली फैक्स ने वायदा किया कि यदि उनकी भविष्यवाणी सच निकली तो उन्हें सम्मानित सरकारी पद दिया जायेगा। भविष्यवाणी सच निकली। तदनुसार उन्हें फौज में कैप्टन का पद दिया गया।

हिटलर के सलाहकारों में पाँच दिव्यदर्शी भी थे, उनका नेतृत्व विलियम क्राफ्ट करते थे। उनकी सलाह को हिटलर बहुत महत्त्व देता था। इस मंडली के एक सदस्य किसी समय ह्वोल भी रह चुके थे। हिटलर के ज्योतिषी उसे क्या सलाह दे रहे होंगे ?

उस जानकारी को वह इंग्लैंड के अधिकारियों को बता देता था। इन जानकारियों से ब्रिटेन बहुत लाभान्वित हुआ और उसने अपनी रणनीति में काफी हेर-फेर किये। फौज के महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व कुछ फौजी अफसरों को सौंपे जाने थे। उनमें से किसका भविष्य उज्ज्वल है ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने एक आदमी से जनरल वरनार्ड मांट गुमरी की ओर इशारा किया। उन्हें ही वह पद दिया गया और अंततः उन्होंने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त करके दिखाई। जापान के जहाजी बेड़े को बुरी तरह नष्ट करने की जो सफल योजना बनाई गई थी, उसमें से भी द्वोल से गंभीर परामर्श किया गया था। महायुद्ध समाप्त होने तक ही उन्होंने ब्रिटिश सरकार को भविष्यवाणियों का लाभ दिया। पीछे उन्होंने वह कार्य पूरी तरह छोड़ दिया और अपने पुराने धार्मिक लेखन-कार्य में लग गये।

● अपने का अज्ञान

ऐसी अनेक घटनाएँ जिन्हें अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता और जिन्होंने प्रबुद्ध व्यक्तियों तथा वैज्ञानिकों के सम्मुख प्रश्नवाची चिह्न लगाये हैं, आये दिन घटती और विचारों का मंथन करने को विवश करती रहती हैं कि सचमुच मनुष्य केवल इतना ही नहीं है; जितना वह दृश्य है या उससे भी कुछ आगे है। मनुष्य कोई चलता फिरता पेड़ नहीं है, अपितु एक ऐसी महान् सत्ता है, जो अणु मात्र होकर भी विभु और सर्व शक्तिमान् बन सकता है।

कुछ वर्ष पहले की ही घटना है, जिसकी अभी तक कोई व्याख्या नहीं की जा सकी है। अमेरिका के अनेक प्रतिष्ठित समाचार पत्रों ने इस घटना को छापा था। यह खबर संसार के कई पत्रों ने भी प्रकाशित की थी कि हैनरोट बीसरूज नामक एक विधवा के शरीर में विश्व-विख्यात चित्रकार गोया की आत्मा ने एक

अद्‌भुत कलाकृति का सृजन किया था, जबकि बीसरूज को कभी ठीक से तूलिका पकड़ना भी नहीं आया था। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस कलाकृति की नायिका तथा गोया की प्रख्यात कलाकृति 'गवालिन' में चित्रित नायिका में अद्‌भुत समानता थी, जबकि बीसरूज ने उस कलाकृति को स्वप्न में भी नहीं देखा था।

परामनोविज्ञान के शोधकर्त्ताओं ने इस घटना का विवेचन करते हुए बताया कि यह काम मरने के बाद भी गोया के सूक्ष्म शरीर ने बीसरूज के माध्यम से कराया था। इस तरह की अनेकानेक घटनाओं का उल्लेख 'जर्नीज आउट ऑफ द बॉडी' (शरीर के बाहर यात्रा) 'द अदर वर्ल्ड' (दूसरा संसार) तथा 'स्प्रिचुअल हीलिंग' में मिलती है।

मरने के बाद अथवा जीवित अवस्था में ही सूक्ष्म शरीर के माध्यम से दूसरों के शरीर में प्रवेश कर जाना योगी-यतियों के लिए सामान्य-सी बात रही है। आद्य शंकराचार्य के संबंध में विख्यात है कि उन्होंने शास्त्रार्थ में विजय पाने के लिए राजा सुधन्वा की मृत-देह में प्रवेश किया था।

भारत में ही कुछ वर्षों पूर्व इस तरह की एक असाधारण घटना घटी, जिसे राष्ट्रीय स्तर के कई समाचार-पत्रों ने प्रकाशित किया।

उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले में एक गाँव है रसूलपुर जाटान। सन् १९५८ में उस गाँव के एक लड़के जसवीर की चेचक से मृत्यु हो गयी। उस समय लड़के की आयु कोई चार वर्ष रही होगी। मृत्यु रात के समय हुई थी, अतः घर के लोगों ने विचार किया कि उसकी अंत्येष्टि अगले दिन की जाये। शव को एक कमरे में लिटाकर बाकी के सब लोग रात बीतने की प्रतीक्षा करते रहे।

कुछ लोग जसवीर के शव के पास भी बैठे थे। उन्होंने देखा कि जसवीर की देह में धीरे-धीरे हल-चल हो रही है। थोड़ी देर

बाद जसवीर उठ बैठा। आस-पास बैठे लोगों को हर्ष मिश्रित आश्चर्य हुआ; कुछ भयभीत भी हुए; परंतु कुछ समझदार लोगों के समझाने-बुझाने पर सभी ने यह मान लिया कि जसवीर पुनर्जीवित हो गया है। पूरी तरह स्वस्थ हो जाने पर घर के लोगों ने जसवीर के व्यवहार में आश्चर्यजनक परिवर्तन देखा। वह प्रायः कहता—"मैं ब्राह्मण हूँ। तुम लोगों के हाथ का बना खाना नहीं खाऊँगा। मुझे मेरी पत्नी के पास ले चलो।"

करीब सप्ताह भर तक घर के लोगों ने काफी उपचार किया। वे समझ रहे थे कि बीमारी के कारण जसवीर का दिमाग पगला गया है, परंतु किसी प्रकार फायदा न होते और जसवीर द्वारा समझदार लोगों की तरह व्यवहार करते देख, उसके कथनानुसार पास के गाँव में ले जाया गया, जहाँ कि उसने अपना घर बताया था।

तलाश करने पर पता चला कि उसी गाँव में शोभाराम त्यागी नामक एक ब्राह्मण युवक की मृत्यु एक दुर्घटना में हो गयी थी। जसवीर अपने को वह शोभाराम ही बताता था। उसने शोभाराम की पत्नी, माँ और भाई को पहचाना तथा उन्हें स्वयं की पत्नी, माँ तथा भाई बताया। जसवीर अपने साथ आये लोगों को उस स्थान पर भी ले गया, जहाँ दुर्घटना घटी थी। उस दुर्घटना में जो अन्य लोग और आहत हुए थे तथा जीवित बच गये थे, उन्होंने जसवीर के कथन की पुष्टि की।

मृत्यु के समय केवल शरीर ही नष्ट होता है। मनुष्य की इच्छाएँ, वासनाएँ, आकांक्षाएँ और भावनाएँ ज्यों की त्यों बनी रहती हैं और सूक्ष्म शरीर के साथ पुनः नये शरीर की तलाश करने लगती हैं।

यदि अपनी चेतना को नियंत्रित किया जा सके तो जीते जी भी सूक्ष्म शरीर को स्थूल देह से अलग कर इच्छानुसार विचरण-भ्रमण किया जा सकता है।

वैज्ञानिकों ने इस दिशा में भी सफल प्रयोग किये हैं और पाया है कि स्थूल शरीर के अतिरिक्त मनुष्य का एक और सूक्ष्म शरीर—जिसे भाव शरीर कहा जाता है—भी है और इसका प्रकाश मानवी काया के इर्द-गिर्द चमकता रहता है। परामनोवैज्ञानिकों ने सूक्ष्म शरीर को न केवल आँखों से देखने वरन् उनका चित्र लेने तक में सफलता प्राप्त कर ली है।

रूस से एक वैज्ञानिक दंपत्ति इलेक्ट्रॉन विशेषज्ञ सेमयोन किर्लियान तथा उनकी पत्नी वेलैंटीना ने मिलकर एक ऐसे कैमरे का निर्माण किया है, जिससे कि मनुष्य और अन्यान्य जीव-जंतुओं के सूक्ष्म शरीर का चित्र खींचा जा सके।

इसका विचार वैज्ञानिक दंपत्ति को कैसे आया ? यह भी एक रोचक घटना है। डॉ० किर्लियान अपने एक शोध छात्र के साथ एक अनुसंधान केंद्र में काम कर रहे थे। एक प्रयोग के दौरान उन्होंने देखा कि इलेक्ट्रोथेरेपी की हाई फ्रीक्वेंसी वाली मशीन तथा रोगी की त्वचा के बीच एक हल्का-सा प्रकाश चमक रहा है। उन्होंने इस प्रकाश का चित्र लेने के लिए मशीन के काँच के स्थान पर धातु का इलैक्ट्रोड लगाकर सीधे अपना हाथ रख दिया, फिर हाथ और इलैक्ट्रोड के बीच में फोटोप्लेट रख दी। यंत्र का बटन दबाते ही किर्लियान का हाथ जलने लगा था। डार्क रूम में ले जाकर फोटोप्लेट धोई गयी तो उन पर उँगलियों के नोंक के आकार की चमकती हुई छवि देखकर वैज्ञानिक दंपत्ति चकित रह गये। इसी घटना से प्रेरित होकर डॉ० किर्लियान ने अपनी पत्नी वेलेंटीना के सहयोग से ऐसे कैमरे का आविष्कार किया, जिससे सूक्ष्म शरीर का चित्र लिया जा सके। इस कैमरे से लिये गये चित्रों में मनुष्याकृति

एक छाया के समान आती है, जिसमें कई तारे चमकते दिखाई देते हैं। किर्लियान ने इस कैमरे के द्वारा वृक्ष की पत्तियों के भी चित्र लिए हैं और उनके चित्र भी मनुष्य अंगों की चमकीली छाया के समान आये हैं।

लिंगदेह—सूक्ष्म शरीर के संबंध में हुई अधुनातन खोजों के आधार पर अब यह भी प्रतिपादित किया गया है कि सूक्ष्म शरीर निद्रा, अचेतन अवस्था या रुग्णावस्था में स्थूल शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है, जो स्थूल शरीर के लिए संभव नहीं है।

अमेरिका के मनोचिकित्सक डॉ० एंडरीना पुटार्रथ ने अपनी पुस्तक 'बियांड टैलीपैथी' में एक घटना का उल्लेख किया है—श्रीमती हायेस प्रातः लगभग साढ़े पाँच बजे सोते से यकायक जाग उठी। उठने का कारण यह था कि उन्होंने एक भयंकर स्वप्न देखा था। स्वप्न में उन्होंने देखा था कि उनका पुत्र जॉन कार में घूमने जा रहा है, तभी एक दुर्घटना हो जाती है और उनके पुत्र का शरीर बुरी तरह घायल हो गया है। इसके पश्चात् उनको दिखाई दिया कि उनके पुत्र का शरीर कपड़े से ढका हुआ है और वह लेटा हुआ है। इस स्वप्न से श्रीमती हायेस इतनी घबड़ा गयीं कि उन्होंने फौरन उस होस्टल में फोन किया, जहाँ जॉन पढ़ता था।

वहाँ के अधिकारियों को किसी प्रकार की दुर्घटना की जानकारी नहीं थी, उन्हें तो यह भी नहीं मालूम था कि इस समय जॉन कहाँ है ? केवल इतना ही बता सके कि जॉन इस समय होस्टल में नहीं है। बारह घंटे बाद श्रीमती हायेस को टेलीफोन द्वारा सूचना मिली कि एक कार दुर्घटना में जॉन घायल हो गया है। वह कल रात अपने मित्रों के साथ सैर करने गया था। जब वह एक पहाड़ी पर तेजी से कार को दौड़ा रहा था तो ७५ फीट की ऊँचाई से उसकी कार एक गड्ढे में गिर गयी। सौभाग्य से कार

इस प्रकार गिरी कि उसको बहुत अधिक चोट नहीं आई। जॉन के कथनानुसार उस समय लगभग साढ़े पाँच बजे थे।

इस घटना के पीछे 'सूक्ष्म शरीर का प्रक्षेपण सिद्धांत' ही कारण रूप में प्रतिपादित किया गया है। मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर अपनी भौतिक काया का परित्याग कर उससे अलग हो जाता है, क्योंकि वह काया मनुष्य की इच्छा, वासना, भावनाओं को पूरी करने में समर्थ नहीं रहतीं। मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर द्वारा देह त्याग की घटना को भी विज्ञान की कसौटी पर कसा जा चुका है।

● मनुष्य ही नहीं, जीव-जंतु भी

ऐसी बात नहीं है कि केवल मनुष्य ही सूक्ष्म शरीर का स्वामी है, अन्य और कोई प्राणी, सूक्ष्म देह धारण करने में असमर्थ हो। बल्कि हर जीवित प्राणी यहाँ तक कि पेड़-पौधों के भी सूक्ष्म शरीर होते हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक श्रीमती एलीन गैरटा ने अपनी पुस्तक 'अर्बचरनस' में लिखा है—"गौर से सूक्ष्म यंत्रों द्वारा देखा जाने पर पौधों तथा पशुओं के चारों ओर एक कुहासा दिखाई देता है, जिसे प्रभा मंडल कहते हैं। यह कुहासा कई स्तरों का होता है। किन्हीं व्यक्तियों में बहुत हल्का होता है, तो किन्हीं में दीप्तिमंत। इसकी दीप्ति मनुष्य की मनःस्थिति के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है।

● जीव-जंतुओं की अतींद्रिय चेतना

वे कारण जो कि हमें इस तरह की बात सोचने को विवश करते हैं, वे हैं जीव-जंतुओं का पूर्वाभास और उनमें विलक्षण मानवीय गुणों का उभार। सन् १९६५ की बात है। छिंदवाड़ा मध्य प्रदेश के जिला प्रशासन अधिकारी श्री दयाकृष्ण विजयवर्गीय प्लेटो क्लब में थे, तब उन्होंने कुछ कौवों को एक विशेष ध्वनि करते हुए गोलाकार उड़ते देखा। कौवे क्लब के पास सरकारी बँगले के ऊपर मँडरा रहे थे। कौओं का इस प्रकार उड़ना मृत्यु सूचक माना जाता

है। श्री विजयवर्गीय जी ने इस घटना को 'धर्मयुग' में छपाते हुए लिखा है—कौओं की इस तरह की उड़ान से मेरे मन में भय उत्पन्न हुआ। कुछ ही दिनों पश्चात् उस सरकारी बंगले में रहने वाले डिप्टी कलेक्टर श्री सावंत की पत्नी का देहांत हो गया। इस घटना के दो माह बाद मैंने कौवों को फिर उसी प्रकार अपने मकान के पास उड़ते देखा। इससे फिर मुझे भय उत्पन्न हुआ। इस घटना के दो-तीन दिन पीछे ही पड़ौस में रहने वाले आयकर कार्यालय के चौकीदार की मृत्यु हो गई। यह घटनाएँ मुझे यह सोचने के लिए विवश करती हैं कि क्या सचमुच कौवों को मनुष्य की मृत्यु का पूर्वाभास हो जाता है ? यदि हाँ, तो क्यों ?

भारतीय शास्त्रकार आत्मा को आकाश से भी सूक्ष्म तत्त्व मानते हैं। तत्त्व की समीक्षा हो सकती है, संभवतः इसी कारण वैशेषिक दर्शन में आत्मा को द्रव्य माना गया है। जीवन में होने वाले सूक्ष्म परिवर्तनों को देखा जाना, अनुभव किया जाना आत्मा के वश की ही बात हो सकती है, इस दृष्टि से कौवे की भी ठीक वैसी ही आत्मा है जैसी कि मनुष्य की। उन्हें कौवा मानकर घृणा करना आत्म-चेतना का ही अपमान और एक आश्चर्यजनक सत्य से आँखें मूँद लेना है। इससे मनुष्य जाति का अहित होता है। वह जीवनगत संकीर्णता के कारण विश्वव्यापी आत्मचेतना की अनुभूति नहीं कर पाता।

अमेरिका के पश्चिमी द्वीप समूह की राजधानी के पास एक ज्वालामुखी पर्वत है, नाम है—माउंट पीरो। सन् १९०४ की घटना है। इस पर्वतीय क्षेत्र के जीव-जंतु बहुत घबराये हुए से थे। कुत्ते दिन भर भूँकते, रात में सियार चिल्लाते। कुछ दिन पीछे तो कुत्ते, सियार, अजगर ही नहीं, अन्य पशु-पक्षी भी उस क्षेत्र को छोड़कर चले गये, सारा क्षेत्र वीरान नजर आने लगा। उस क्षेत्र के निवासी हैरान थे कि आखिर इन जीव-जंतुओं को हो क्या गया है, जो इस

तरह पलायन कर रहे हैं और एक रात ज्वालामुखी फूट पड़ा—अपनी भयंकर ध्वनि और गति के साथ। लगातार कई दिन तक अग्नि वर्षा होती रही और उसने करोड़ों रुपयों की संपत्ति के साथ लगभग ३० हजार मनुष्यों को भूनकर रख दिया। जबलपुर में हुए सांप्रदायिक दंगे के समय भी कुत्तों ने ऐसी ही चेतावनी भूँक-भूँक कर दी थी, जिसे वहाँ के लोग अब तक भी याद करते हैं।

मनुष्य बड़ा बुद्धिमान् जीव है, फिर भी वह नहीं समझ पाता; क्योंकि उसने अपने जीवन से प्रकृति को हटाकर कृत्रिमता को प्रवेश दे दिया है। उसने बैरोमीटर बनाए, गुब्बारे उड़ाए, टेलस्टार उड़ाए तो भी भविष्य में होने वाली घटनाओं का व्यक्ति इतना अच्छा पूर्वाभास नहीं कर पाता जितना कि साधारण और तुच्छ समझे जाने वाले सियार-कुत्तों ने, कीट-पतंगों ने जान लिया। आत्मा कर्मवश वासना और पापवश इन क्षुद्र योनियों में जाती है, तो क्या हुआ, वह अपना द्रव्य-गुण थोड़े ही त्याग सकती है। उसकी अपनी विशेषताएँ मनुष्य जीवन में न सही—जीव-जंतुओं में ही सही प्रकट हुए बिना रहती नहीं। मनुष्य के लिए तो यह अलभ्य अवसर होता है कि वह सर्वांगपूर्ण शरीर-यंत्र का उपयोग आत्म-विकास में करे, पर उसने तो अपना जीवन इतना भौतिक और बाह्यमुखी बना लिया है कि अंतःकरण की बात जो उसका यथार्थ सत्य है, जीवन है, उसकी बात कभी सोच ही नहीं पाता।

पशु-पक्षियों का विलक्षण स्वभाव प्राकृतिक-प्रेरणाएँ हो सकती हैं। उनके पूर्वाभास की बौद्धिक क्षमता का अस्तित्व प्राकृतिक प्रेरणा न होकर आत्मा के गुणों का ही प्रकटीकरण हो सकता है। उस आत्मा को ही जानने के लिए शास्त्रकार जोर देते हैं। वही सर्वव्यापी, सर्वज्ञ है। उसी को पाने में पूर्णता है। प्रो० कर्वी, डॉ० वेलियंट तथा डॉ० डी० स्वैस आदि वैज्ञानिकों ने ऐसे अनेक विलक्षण प्रमाण और जानकारियाँ इकट्ठी की हैं, जो जीव-जंतुओं

की असाधारण क्षमताओं का प्रतिपादन करती हैं। इन्होंने भी स्वीकार किया है कि जीव-जंतुओं में मनुष्य के समान ही कोई आश्चर्यजनक सत्य है, जिसे हम नहीं जानते। उन्होंने पशु-पक्षियों के पूर्वाभास की अनेक घटनाएँ दी हैं और उन्हें ग्रह-उपग्रहों की यात्रा में महत्त्वपूर्ण योगदान का माध्यम माना है।

वैदिक, पौराणिक और लोक साहित्य में जीव-जंतुओं की विलक्षणताओं के वर्णन से एक ओर आत्मा की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन मिलता है तो दूसरी ओर उनकी इन असाधारण क्षमताओं का उपयोग भी हुआ है। पक्षियों की प्रज्ञा के उपयोग के प्रमाण—

खाटा मोर महातुरो, खाटी होय जु छाछ।
मेहमदी पर परन को जाने काछै काछ।।

अर्थात् मोर आतुरतापूर्वक बोलता है, तब शीघ्र वर्षा आती है।

ढोकी बोले जाय अकास।
अब नाहीं बरखा कै आस।।

अर्थात् ढोकी बोलकर आकाश में उड़ जाये तो मानना चाहिए कि अब वर्षा नहीं होगी। प्राचीनकाल में किसान, वणिक इन जानकारियों से बड़ा लाभ लिया करते थे। तब पशु-पक्षियों से प्रेम मनुष्य जाति के समान ही किया जाता था, फिर यदि जटायु ने अपनी कृतज्ञता जान देकर दर्शायी हो तो आश्चर्य क्या ?

वसंतराज शाकुन, घाघ और भड्डरी की कहावतों में पशु-पक्षियों की विलक्षण योग्यताओं और पूर्वाभास का वर्णन मिलता है। प्रस्थान काल में गाय बछड़े को दूध पिलाती देखकर, नेवले का रास्ता काटना शुभ माना गया है। सारस का दाहिने बोलना, शुक का बाएँ बोलना शुभ लक्षण है। किसी की मृत्यु की सूचना गिद्ध दाहिने बोलकर देता है। रात में घर उल्लू का बोलना मृत्यु का या चोरी आदि अनिष्ट का सूचक होता है। कौवा घर की मुंडेर पर बैठता है तो स्त्रियाँ उसकी ध्वनि पहचानने का प्रयत्न करती हैं।

"वसंतराज शाकुनं" में बताया है कि यदि कौवा कर-कर बोलता है तो गृह-कलह, शरीर फुलाकर, कँपाकर कर्कश शब्द करता है तो किसी की मृत्यु का, "कुलकुल" ध्वनि अतिथि के आने की सूचना तथा "कूँ कूँ" धन लाभ की सूचक होती है। विस्मय ध्वनियों का नहीं वरन् इस बात का है कि जिस बात को मनुष्य जैसा बुद्धिशील प्राणी नहीं जान पाता, उसे यह पक्षी कैसे जान लेते हैं ? भविष्य का ज्ञान रखने वाले इन जीव-जंतुओं को तब क्या तुच्छ मानना शोभा देता है ? क्या उनसे आत्मा की सर्वव्यापकता का शिक्षण और ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता ?

● पशु-पक्षियों की अतींद्रिय शक्ति

प्राणिविद्या विशारद विलियम जे० लांग ने पशुओं की इंद्रियातीत शक्ति के बारे में अपनी पुस्तक 'हाड एनिमल्स टॉक' में विस्तृत प्रकाश डालते हुए बताया है कि भले ही बुद्धि-कौशल में मनुष्य की तुलना में पशु पिछड़े हुए हों, पर उनमें इंद्रियातीत क्षमता कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है, उसी के आधार पर वे अपनी जीवन- चर्या का सुविधापूर्वक संचालन करते हैं। कुत्ते और भेड़ियों की नाक मीलों दूर की गंध लेती है। हिरन के कान कोसों दूर की आहट लेते हैं। आकाश में मीलों ऊँचे उड़ते हुए चील और गिद्ध धरती पर पड़े मांस को देख लेते हैं। देखने, सुनने और सूँघने की यह क्रिया मात्र दृश्य, ध्वनि या गंध का ही अनुभव नहीं करती वरन् उन्हें ऐसी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ भी देती हैं, जिनके आधार पर वे आत्म-रक्षा से लेकर सुविधा-सामग्री प्राप्त करने में सरलतापूर्वक सफल हो सकें।

लॉग महोदय ने अपनी पुस्तक में ऐसे अनेकों प्रसंग भी लिखे हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि जीव-जंतुओं को निकट भविष्य में घटित होने वाले घटनाक्रम का भी सही पूर्वाभास मिल जाता है।

यदि उनकी वाणी होती तो वे कहीं अधिक सही भविष्य कथन कर सकते।

पुस्तक के कुछ संस्मरण इस प्रकार हैं—एक मैदान में हिरनों का झुंड ऐसी अस्वाभाविक तेजी से घास चर रहा था, मानो उन्हें कहीं जाने की आतुरता हो। उस समय कुछ कारण समझ में नहीं आ रहा था, पर कुछ घंटे बाद ही बर्फानी तूफान आ गया और कई दिन तक घास मिलने की संभावना नहीं रही। स्थिति का पूर्वाभास प्राप्त करके हिरन अत्यंत तीव्रता से इतनी घास चरने में लगे थे कि कई दिन तक उससे गुजर हो सके।

जब बर्फ पड़ने को होती है, तब रीछ अपनी गुफा में चले जाते हैं और उसमें पहले कई दिन का आहार जमा कर लेते हैं।

उत्तरी कनाडा में झील की मछलियाँ बर्फ की मोटी सतह झील पर जमने से पहले ही गर्म जगह में पलायन कर जाती हैं।

बियना में एक कुत्ता माल उठाने-उतारने की क्रेन के समीप ही पड़ा सुस्ता रहा था। अचानक वह चौंका, उछला और बहुत दूर जाकर बैठा। इसके कुछ देर बाद क्रेन की रस्सी टूटी और भारी लौह खंड उसी स्थान पर गिरा, जहाँ कुत्ता बैठा था। कुत्ते के चौंककर भागने का कारण उसका पूर्वाभास ही था।

मनुष्य ने अपनी सुरक्षा के लिए जिस प्रकार अनेक ऐसे यंत्रों का निर्माण किया है, जिससे वह वर्षा, भूकंप, युद्ध आदि की पूर्व जानकारी प्राप्त कर लेता है; उसी प्रकार प्रकृति ने प्राणियों की रक्षा के लिए भी उन्हें अद्‌भुत ज्ञान और चेतना दी है। चमगादड़ में इस तरह के ज्ञान की विचित्र क्षमता पाई जाती है। एक बार स्पेलनजानी नामक एक इटैलियन ने चमगादड़ की उड़ान का परीक्षण किया। उसने एक कमरे की छत से बहुत-से धागे लटकाये और उनमें घंटियाँ बाँध दी कि जिससे धागों से टकराने पर वे घंटियाँ बजें। उसके बाद उसमें एक चमगादड़ को दौड़ाया।

चमगादड़ बड़ी देर तक बंद कमरे में दौड़ता रहा, पर एक भी घंटी न बजी। चमगादड़ की दृष्टि बहुत कमजोर होती है। उसने किस तरह अपने आपको उन धागों से बचाया, यह बड़ा आश्चर्य है। कहते हैं, चमगादड़ प्रति सेकंड ३० बार ध्वनि-तरंगें भेजता है और जितने समय में उसे उनकी प्रतिध्वनि आती है, वह सामने वाली बाधाओं का पता लगा लेता है और उनसे बचकर निकल जाता है।

यह चमत्कार वस्तुतः जीवों के नहीं, आत्म-चेतना के चमत्कार हैं। जीवात्मा की गतिविधियाँ विस्तीर्ण न होकर किसी एक दिशा में संकीर्ण होती रहती हैं और वह उस प्रकार की योनि में चला जाता है। हमारे धर्मशास्त्रों में चौरासी लाख योनियाँ हैं और प्राणी उन चौरासी लाख योनियों में भटक चुकने के बाद मनुष्य शरीर में आता है। इस तरह उसमें उन जीवों की विशेषताएँ भी हो सकती हैं, संस्कार भी। कुछ विशेषताएँ मंद होती हैं, कुछ तीव्र; कुछ संस्कार दबे रहते हैं, कुछ प्रखर होते हैं। जो मनुष्य अपनी बुद्धि-विवेक से बुरे संस्कारों को काट डालता है, उसमें मनुष्येतर प्राणियों की तरह अनेक प्राकृतिक चमत्कारों, शक्तियों, योग्यताओं और सामर्थ्यों का विकास होने लगता है।

यदि भौतिक विज्ञान जीवधारी की जड़ प्रकृति को ही एक स्थूल उत्पादन मानता रहेगा, तो उसे अतींद्रिय चेतना का कभी कोई आधार एवं कारण न मिलेगा। जब प्राणी एक 'चलता-फिरता वृक्ष' ही ठहरा तो उसकी शारीरिक एवं मानसिक हलचलें भी शरीर-ज्ञान से बाहर कैसे जा सकती हैं, पर वे जाती हैं। ऐसी दशा में भौतिक विज्ञान को, प्राणी को जड़ जगत् की ही एक हलचल मानने तक सीमित नहीं रहना होगा, वरन् आत्मा की अलौकिक सत्ता को स्वीकार करना होगा। अतींद्रिय चेतना का समाधान तभी मिल सकता है।

जार्जिया (रूस) के निवासियों में काकेशियाई कुत्ते त्साब्ला की कथा घर-घर प्रचलित है। वह इतना स्वामिभक्त और कर्तव्य परायण था कि उसकी तुलना करके, लोग अपने कर्मचारियों का उद्‌बोधन करते रहते थे। तिब्लिसी क्षेत्र में यह कुत्ता अपने मालिक के जानवरों को प्रायः अकेला ही ले जाया करता था। जानवरों को कहाँ चरना है ? कहाँ बैठना है ? कहाँ पानी पाना है ? कब लौटना है ? यह सब बातें उसके ध्यान में थीं। कोई जानवर झुंड से बाहर निकलकर इधर-उधर खिसक न जाये, इसका वह पूरा ध्यान रखता था और भेड़िये, तेंदुए जो उसी क्षेत्र में भेड़-बकरियों की घात लगाते रहते थे, उनसे जूझने के लिए सदा मुस्तैद रहता था। उसने ऐसी कई लड़ाइयाँ जीती भी थीं। घायल होकर भी उसने अनेक शिकारियों को भगाया और अपने झुंड के किसी जानवर का बाल बाँका न होने दिया। मालिक के छोटे लड़के सांद्री से वह इतना हिला-मिला था कि दोनों पास-पास बैठकर खाते और फुरसत के समय भरपूर खेलते।

इस कुत्ते की एक दूर के पशु फार्म पर जरूरत पड़ी। मालिक ने उसे देना मंजूर कर लिया। त्साब्ला की आँखें बंद करके ट्रक में पटककर उसे सैकड़ों मील दूर उस नये फार्म में ले जाया गया। वहाँ उसे बाँधकर रखा गया। कुत्ते का बुरा हाल था, न उसने कुछ खाया न पिया, रोता रहा। एक दिन उसका दाव लग गया तो रस्सी तुड़ाकर भाग निकला। आँखें बंद करके ट्रक में डालकर लाया गया था, फिर भी उसने अंतःप्रेरणा के आधार पर दौड़ लगाई और नदी नाले पार करता हुआ भूखा, प्यासा, रास्ते के शत्रुओं से जूझता, क्षत-विक्षत शरीर लेकर अपने पुराने स्थान पर लौट आया और अपने प्यारे साथी सांद्री से लिपट-लिपट कर रोया।

इस घटना को लेकर जार्जिया विज्ञान एकेडेमी के शरीर शास्त्री आई० एस० वेकेताश्विली ने शोध कार्य आरंभ किया कि

क्या पशुओं में अतिरिक्त अतींद्रिय चेतना होती है ? और क्या वे उसके आधार पर बिना इंद्रियों का प्रत्यक्ष सहारा लिये वह काम कर सकते हैं, जो आँख-कान आदि से ही संभव है।

उन्होंने यह परीक्षण कई जानवरों पर किये कि क्या उनमें इतनी अतींद्रिय चेतना होती है, जिसके सहारे वे प्रधान ज्ञानेंद्रिय आँख का काम कर सकें। इसके लिए उन्होंने एक बिल्ली पाली। नाम रखा—ल्योवा। उसकी आँखों पर ऐसी पट्टी बाँधी गई, जिससे वह कुछ भी देख न सके। उसे साधारणतया बाँधकर रखा जाता, पर जब खाने का वक्त होता तो उसे खोला जाता और खाने की तश्तरी कमरे के एक कोने पर दूर रख दी जाती। शुरू में तो उसे अपना भोजन तलाश करने में कठिनाई हुई, पर पीछे वह इतनी अभ्यस्त हो गयी कि कमरे के किसी भी स्थान पर खाना रखा जाये, वह वहीं पहुँच जाती।

नाक की गंध से सूँघकर, उसके आधार पर वह ऐसा कर सकती है, यह बात वैज्ञानिक जानते थे; इसलिये उन्होंने इसके साथ ही अतींद्रिय ज्ञान की एक कठिन परीक्षा यह रखी कि तश्तरी में ही पत्थर के टुकड़े भी रख दिये जाते। गंध तो सारे प्लेट में से उठती थी; इसलिये उसमें रखी हुई किसी चीज को वह मुँह में डाल सकती थी, पर देखा गया कि बहुत ही निश्चित रीति से उसने अपना खाना ही खाया और पत्थर के टुकड़ों को चाटा तक नहीं। इसी प्रकार कुछ दिन में वह रास्ते में रखी हुई कुर्सी, संदूक आदि को बचाकर, इस तरह अपना रास्ता निकालने लगी, जिससे किसी चीज के गिरने की दुर्घटना भी न हो और चलना भी कम पड़े।

इसी प्रयोग के लिए एक छोटा काला कुत्ता पाला गया। नाम रखा—जिल्डा। इसकी आँखों पर भी पट्टी बाँध दी गई। प्रयोगशाला में क्या चीज कहाँ रहती है, इसका उसे पता तक न

था। वह कुछ दिन में ही सब कुछ भाँप गया और बिना किसी से टकराये बुलाई हुई आवाज पर पहुँचने लगा।

वेकेताश्विली ने अपने परीक्षणों की शृंखला में मनुष्यों को भी जोड़ा है। उन्होंने एक ऐसे जन्मांध छोटे लड़के की कथा लिखी है, जो उन्हें एक व्यक्ति के पास तक रास्ता दिखाता हुआ—टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ पार करते हुए ईंट-पत्थरों और गड्ढों को बचाता हुआ उछलता-कूदता आगे-आगे गया था।

इन परीक्षणों से उन्होंने निष्कर्ष निकाला है कि अतींद्रिय चेतना, हर प्राणी में विद्यमान रहती है। किसी में न्यून, किसी में अधिक। कुछ जन्मजात रूप से उसकी पर्याप्त मात्रा साथ लेकर आते हैं और कुछ प्रयत्न करके उसे जगा या बढ़ा सकते हैं। उन्होंने अपने निष्कर्षों में यह भी कहा है कि अंधों में यह अतींद्रिय ज्ञान का एक स्तर—लिविरिंथ रेसेप्टर—अपेक्षाकृत अधिक विकसित हो जाता है। यदि प्रयत्न किया जाये तो उनकी यह क्षमता अधिक विकसित हो सकती है और वे नेत्रों वाले मनुष्यों से भी अधिक उपयोगी जीवन जी सकते हैं।

प्राणियों में एक बड़ी विशेषता यह है कि वे परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल लेते हैं। प्रकृति के उतार-चढ़ाव और परिस्थितियों के प्रवाह विकट तो जरूर होते हैं, पर इतने नहीं कि मनुष्य की जिजीविषा को चुनौती दे सकें। प्राणियों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता ढलती-बदलती रहती है और यदि उन्हें विषम परिस्थितियों में रहना पड़े तो अपने में तदनुकूल सहनशीलता एवं परिवर्तन उत्पन्न कर लेते हैं। इसी प्रकार जिनके समीप रहना पड़ता है, उनका प्रभाव ग्रहण करके प्राणी उसी रंग-रूप और आकृति-प्रकृति में भी ऐसा हेर-फेर कर लेते हैं, जिससे वातावरण के साथ उनके सदृश ही प्रतीत होने लगें। समीपता का प्रभाव मानसिक ही नहीं, शारीरिक भी होता है। इसे प्रकारांतर से अतींद्रिय

चेतना ही कहना चाहिए। सर्दी में गल जाना, गर्मी में जल जाना ही संभव हो सकता है, फिर शरीर अपने ढाँचे और क्रम की ही परिस्थिति के अनुरूप ढलने और बदलने लगे तो इसे अतींद्रिय चेतना के अतिरिक्त और क्या कहा जायेगा ?

उत्तरी ध्रुवों पर सफेद भालू होता है। वह बर्फ में इस प्रकार बैठा रहता है कि दूसरे को कुछ पता ही नहीं चलता कि वह भालू है या बर्फ की कोई चट्टान। वृक्षों की झाड़ियों में रहने वाले तेंदुए, जिराफ, हिरन, सर्प आदि के शरीरों पर ऐसे निशान बन जाते हैं कि उन्हें देखने पर वे भी वृक्षों की कोई शाखा जैसे ही दीखते हैं।

तितलियों की छटा भारतवासी दार्जिलिंग में देख सकते हैं। जैसे रंग के फूल वैसे ही रंग की तितलियाँ। अलग से देखा जाये तो मात्र फूल भर मालूम पड़ता है, उस पर कोई बैठा होगा, उसका तनिक भी आभास नहीं होता; पर जब उन फूलों के पास जाया जाये तो उन्हीं जैसे रंग की तितलियाँ उड़ने लगती हैं। इस प्रकार रंग-बिरंगे फूलों के साथ उन्हीं रंगों की तितलियाँ एक अपूर्व छटा दिखाती हैं। कई तितलियाँ तो पत्तों के रंग की ही नहीं, उनके आकार की भी होती हैं। जब पतझड़ में पत्तों का रंग पीला पड़ता है, तो वे भी अपना हरा चोला पीला कर लेती हैं।

बाँस के पेड़ पर लटका रहने वाला साँप बिल्कुल बाँस की टहनी जैसा लगता है, उस पर गाँठों जैसे निशान तक होते हैं।

जिन जीवों को शत्रुओं से खतरा होता है और आत्मरक्षा की अतिरिक्त आवश्यकता अनुभव करते हैं, उनकी आकृति और प्रकृति में ऐसा विकास हो जाता है, जिसमें वे आत्मरक्षा सरलतापूर्वक कर सकें।

समुद्री घोड़ा अपने शरीर को घास-पात से ढके रहता है, ताकि खूँखार जल-जंतु उसे पेड़ भर समझें और हमला न करें। कुछ घोंघे ऐसे भी होते हैं कि जब मछलियों के आक्रमण के शिकार

होते हैं तो एक काला-सा द्रव मुँह से उगल देते हैं, उस कालिमा की धुँध में मछलियाँ उन्हें ठीक तरह देख नहीं पातीं इतने में वे उनकी पकड़ से बाहर खिसक जाते हैं। मेडागास्कर में एक ऐसी छिपकली होती है, जिसमें तेज दौड़ने की क्षमता नहीं होती। उसे मांसाहारी पक्षी आसानी से पकड़ सकते हैं। आत्मरक्षा के लिए उसमें एक अद्‌भुत विशेषता यह उत्पन्न हुई है कि पूँछ की जड़ बहुत कमजोर होती है। जब वह मुसीबत में फँसती है तो झटक कर अपनी पूँछ तोड़ डालती है और वह टुकड़ा कटने के बाद फड़फड़ाने लगता है। आक्रमणकारी उसे ही शिकार समझकर खाने लगता है और चुपचाप चिपकी हुई छिपकली इसी प्रकार अपने प्राण बचा लेती है।

फलों में और शाक-भाजियों में पड़े हुए कीड़े प्रायः उन्हीं के रंग के होते हैं। पक्षियों के अंडों को खा जाने के घात में कितने ही जंतु फिरते रहते हैं, इसलिए पक्षी इस तरह की टहनियों में या घास-पात में उन्हें छिपाकर सेते हैं, जहाँ वे घातकर्ताओं की दृष्टि से अपने अंडों का बचाव कर सकें।

हमें यह मानकर चलना होगा कि प्राणी जड़-जगत् का घास-पात जैसा उत्पादन नहीं है और न चलता-फिरता वृक्ष है—जैसा कि विज्ञान द्वारा माना जाता रहा है। जीवधारी की चेतना में आत्मा का प्रकाश है और उस प्रकाश में वह सामर्थ्य विद्यमान है, जो इंद्रिय सामर्थ्य की परिधि से आगे की बात सोच सके और ऐसे कदम उठा सके, जिसे जड़-पदार्थों के लिए उठा सकना संभव नहीं हो सकता।

❐ ❐

आत्मा का अस्तित्व—एक गंभीर प्रश्न

★ ★

एक प्रश्न जो सदियों से अब तक उलझता हुआ आ रहा है, वह है—क्या-शरीर से पृथक्-आत्मा-नाम की कोई सत्ता वस्तुतः है अथवा नहीं ? भौतिकतावादी दृष्टिकोण ने प्रत्यक्ष को प्रमाण के आधार पर इस मान्यता से इनकार किया है कि चेतना कोई ऐसा तत्त्व है, जिसका कभी विनाश नहीं होता, जो शरीर नष्ट हो जाने के बाद भी बना रहता है और अनेक योनियों में विचरण करता हुआ अपनी सनातन जीवन यात्रा पूर्ण करता रहता है। दूसरी ओर साधकों, संतों, तपस्वी और योगियों ने अपनी अंतरंग अनुभूतियों के आधार पर आत्म-तत्त्व का प्रतिपादन किया है और उसे जीवन सत्त्व कह कर उसे देखने-सुनने और प्राप्त करने को ही परमार्थ, जीवन-लक्ष्य और परम पुरुषार्थ कहा है। प्रत्यक्ष का विराम होने के कारण और नये का उदय होते रहने के कारण प्रत्यक्षवादी बुद्धि भी भ्रमित होती है तथा अदृश्य को देख न पाने अथवा उसको प्राप्त करने के पीछे आधारभूत तपश्चर्या को पूर्ण न कर सकने के कारण आस्थावादी बुद्धि भी चकराती है। यही कारण है कि यह प्रश्न अनादि काल से उलझता-सुलझता चला आ रहा है। प्रश्न इतना मार्मिक और महत्त्वपूर्ण है कि उसे निरुत्तरित छोड़ा जाना भी मानव जीवन के हित में नहीं; विशेषकर उस स्थिति में जबकि उसके आधार पर जीवन दर्शन निर्धारित होते हैं और उसके भले-बुरे परिणाम भी संसार को भुगतने पड़ते हैं।

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान ने अदृश्य, अप्रकट को स्पष्ट करने का एक बहुत बड़ा कार्य किया है। सच पूछा जाए तो उसने भारतीय दर्शन के आत्मावादी सिद्धांत को पूरी तरह पुष्ट भी कर दिया है, किंतु प्रायः विज्ञान जिनके पास है, उन्हें आध्यात्मिक दर्शन के सामीप्य का अवसर नहीं मिला; अतएव सूक्ष्म का तथ्यान्वेषण

कर लेने के बावजूद वैज्ञानिकों के सम्मुख भी यह प्रश्न उलझा का उलझा रह गया। इसे इस युग की एक अद्‌भुत उपलब्धि कहा जाना चाहिए कि मानवीय अंतःकरण ने विज्ञान की संगति अध्यात्म से मिलाकर इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न को सुलझाने का यत्न किया।

● मैं और मेरे में उलझी सचाई

मैं क्या हूँ ? मैं कौन हूँ ? इस छोटे से प्रश्न का सही समाधान न कर सकने के कारण 'मैं' को कितनी-कितनी विषम विडंबनाओं में उलझना पड़ता है और विभीषिकाओं में संत्रस्त होना पड़ता है। यदि यह समय रहते समझा जा सके तो हम वह न रहें, जो आज हैं, वह न सोचें जो आज सोचते हैं और वह न करें जो आज करते हैं।

हम कितने बुद्धिमान् हैं कि धरती आकाश का चप्पा-चप्पा छान डाला और प्रकृति के रहस्यों को प्रत्यक्ष करके सामने रख दिया। इस बुद्धिमत्ता की जितनी प्रशंसा की जाये, उतनी कम है और अपने आपके बारे में जितनी उपेक्षा बरती गई, जिसकी उतनी निंदा की जाये वह भी कम ही है।

जिस काया को शरीर समझा जाता है, क्या यही मैं हूँ ? क्या कष्ट, चोट, भूख, शीत, आतप आदि से पग-पग पर व्याकुल होने वाला अपनी सहायता के लिए बजाज, दर्जी, किसान, रसोइया, चर्मकार, चिकित्सक आदि पर निर्भर रहने वाला ही मैं हूँ ? दूसरों की सहायता के बिना जिसके लिए जीवन धारण कर सकना कठिन हो—जिसकी सारी हँसी-खुशी और प्रगति दूसरों की कृपा पर निर्भर हो, क्या वही असहाय, असमर्थ, मैं हूँ ? मेरी आत्म निर्भरता क्या कुछ भी नहीं है ? यदि शरीर ही मैं हूँ तो निस्संदेह अपने को सर्वथा पराश्रित और दीन-दुर्बल ही माना जाना चाहिए।

परसों पैदा हुआ, खेल-कूद, पढ़ने-लिखने में बचपन चला गया। कल जवानी आई थी। नशीले उन्माद की तरह आँखों में, दिमाग में छाई रही। चंचलता और अतृप्ति से बेचैन बनाये रही। आज ढलती उम्र आ गई। शरीर ढलने-गलने लगा। इंद्रियाँ जवाब देने लगीं। सत्ता बेटे, पोतों के हाथ चली गई। लगता है एक उपेक्षित और निरर्थक जैसी अपनी स्थिति है। आने वाले कल में यही काया जरा-जीर्ण होने वाली है। आँखों में मोतियाबिंद, कमर घुटनों में दर्द, खाँसी, अनिद्रा जैसी व्याधियाँ घायल गधे पर उड़ने वाले कौए की तरह आक्रमण की तैयारी कर रही हैं। अपाहिज और अपंग की तरह कटने वाली जिंदगी कितनी भारी पड़ेगी। यह सोचने को जी नहीं चाहता। वह डरावना और घिनौना दृश्य एक क्षण के लिए भी आँखों के सामने आ खड़ा होता है, तो रोम-रोम काँपने लगता है, पर क्या उस अवश्यंभावी भवितव्यता से बचा जाना संभव नहीं ? जीवित रहना है तो क्या इसी दुर्दशाग्रस्त स्थिति में ही पिसना पड़ेगा ? बच निकलने का कोई रास्ता नहीं। क्या यही मैं हूँ ? क्या इसी निरर्थक विडंबना के कोल्हू के चक्कर काटने के लिए ही 'मैं' जन्मा ? क्या जीवन का यही स्वरूप है ? मेरा अस्तित्व क्या इतना ही तुच्छ है ?

आत्म चिंतन कहेगा—नहीं—नहीं—नहीं। आत्मा इतना हेय और हीन नहीं हो सकता। वह इतना अपंग और असमर्थ—पराश्रित और दुर्बल कैसे होगा ? यह तो प्रकृति के पराधीन पेड़-पौधों जैसा—मक्खी, मच्छरों जैसा जीवन हुआ। क्या इसी को लेकर—मात्र जीने के लिए मैं जन्मा ? सो भी जीना ऐसा जिसमें न चैन, न खुशी, न शांति; न आनंद, न संतोष। यदि आत्मा—सचमुच परमात्मा का अंश है तो वह ऐसी हेय स्थिति में पड़ा रहने वाला हो ही नहीं सकता। या तो मैं हूँ ही नहीं। नास्तिकों के प्रतिपादन के अनुसार या तो पाँच तत्त्वों के प्रवाह में एक भँवर—बबूले जैसी

क्षणिक काया लेकर उपज पड़ा हूँ और अगले ही क्षण अभाव के विस्मृति-गर्त में समा जाने वाला हूँ; या फिर कुछ हूँ तो इतना तुच्छ और अपंग हूँ, जिसमें उल्लास और संतोष जैसा—गर्व और गौरव जैसा—कोई तत्त्व नहीं है। यदि मैं शरीर हूँ तो हेय हूँ। अपने लिए और इस धरती के लिए भारभूत। पवित्र अन्न को खाकर घृणित मल में परिवर्तन करते रहने वाले—कोटि-कोटि छिद्रों वाले इस कलेवर से दुर्गंध और मलीनता निःसृत करते रहने वाला—अस्पर्श्य—घिनौना हूँ मैं'। यदि शरीर हूँ तो इससे अधिक मेरी सत्ता होगी भी क्या ?

मैं यदि शरीर हूँ तो उसका अंत क्या है ? लक्ष्य क्या है ? परिणाम क्या है ?—मृत्यु—मृत्यु—मृत्यु। कल नहीं तो परसों वह दिन तेजी से आँधी-तूफान की तरह उड़ता-उमड़ता चला आ रहा है, जिसमें आज की मेरी यह सुंदर-सी काया—जिसे मैंने अत्यधिक प्यार किया—प्यार क्या, जिसमें पूरी तरह समर्पित हो गया—घुल गया; अब वह मुझसे विलग हो जायेगी। विलग ही नहीं, अस्तित्व भी गँवा बैठेगी। काया में घुला हुआ मैं'—मौत के एक ही थपेड़े में कितना कुरूप—कितना विकृत—कितना निरर्थक—कितना घृणित हो जायेगा कि उसे प्रिय परिजन तक—कुछ समय और उसी घर में रहने देने के लिए सहमत न होंगे, जिसे मैंने ही कितने अरमानों के साथ—कितने कष्ट सहकर बनाया था। क्या यही मेरे परिजन हैं ? जिन्हें लाड़-चाव से पाला था। अब ये मेरी इस काया को—घर में से हटा देने के लिए—उसका अस्तित्व सदा के लिए मिटा देने के लिए क्यों आतुर हैं ? कल वाला ही तो मैं हूँ।

मौत के जरा से आघात से मेरा स्वरूप यह कैसा हो गया ? अब तो मेरी मृत काया—हिलती-डुलती भी नहीं—बोलती-सोचती भी नहीं ! अब तो उसके कुछ अरमान भी नहीं हैं। हाय ! यह कैसी मलीन, दयनीय, घिनौनी बनी जमीन पर लुढ़क रही है। अब तो यह

पलंग बिस्तर पर सोने तक का अधिकार खो बैठी। कुशाओं के बान से ढँकी—गोबर से लिपी गीली भूमि पर यह पड़ी है। अब कोई चिकित्सक भी इसका इलाज करने को तैयार नहीं। कोई बेटा, पोता गोदी में नहीं आता। पत्नी छाती तो कूटती है, पर साथ सोने से डरती है। मेरा पैसा-मेरा वैभव—मेरा सम्मान, हाय रे ! सब छिन गया—हाय रे ! मैं बुरी तरह लुट गया। मेरे कहलाने वाले लोग ही—मेरा सब कुछ छीनकर मुझे इस दुर्गति के साथ घर से निकाल रहे हैं। क्या यही अपनी दुर्दशा कराने के लिए मैं जन्मा था ? यही है क्या मेरा अंत ? यही था क्या मेरा लक्ष्य ? यही है क्या मेरी उपलब्धि ? जिसके लिए कितने अरमान सँजोये थे, जिसके लिए कितने पुरुषार्थ किये थे—क्या उसका निष्कर्ष यही हूँ ? यही हूँ मैं—जो मुर्दा बना पड़ा हूँ और लकड़ियों की चिता में जलकर अगले ही क्षण अपना अस्तित्व सदा के लिए खोने जा रहा हूँ।

लो अब पहुँच गया मैं चिता पर। लो, मेरा कोमल मखमल जैसा शरीर—जिसे सुंदर, सुसज्जित, सुगंधित बनाने के लिए घंटों शृंगार किया करता था, अब आ गया अपनी असली जगह पर। लकड़ियों का ढेर—उसके बीच दबाया-दबोचा हुआ मैं। लो यह लगी आग। लो, अब मैं जला। अरे ! मुझे जलाओ मत। इन खूबसूरत हड्डियों में मैं अभी और रहना चाहता हूँ, मेरे अरमान बहुत हैं, इच्छाएँ तो हजार में से एक भी पूरी नहीं हुई। मुझे मेरी उपार्जित संपदाओं से अलग मत करो, प्रियजनों का वियोग मुझे सहन नहीं। इस काया को जरा-सा कष्ट होता था तो चिकित्सा, उपचार में बहुत कुछ करता था। इस काया को इतनी निर्दयतापूर्वक मत जलाओ। अरे ! स्वजन और मित्र कहलाने वाले लोगों—इस अत्याचार से मुझे बचाओ। अपनी आँखों के आगे ही मुझे इस तरह जलाया जाना तुम देखते रहोगे। मेरी कुछ भी सहायता न करोगे ? अरे ! यह क्या—बचाना तो दूर, उलटे तुम्हीं मुझमें आग लगा रहे

हो। नहीं—नहीं, मुझे जलाओ मत—मुझे मिटाओ मत। कल तक मैं तुम्हारा था—तुम मेरे थे—आज ही क्या हो गया, जो तुम सबने इस तरह मुझे त्याग दिया ? इतने निष्ठुर तुम सब क्यों बन गये ? मैं और मेरा संसार क्या इस चिता की आग में ही समाप्त हुआ ? सपनों का अंत—अरमानों का विनाश—हाय री चिता—हत्यारी चिता, तू मुझे छोड़। मरने का, जलने का मेरा जरा भी जी नहीं है। अग्नि देवता, तुम तो दयालु थे। सारी निर्दयता मेरे ही ऊपर उड़ेलने के लिए क्यों तुल गये ?

लो, सचमुच मर गया। मेरी काया का अंत हो ही गया। स्मृतियाँ भी धुँधली हो चलीं। कुछ दिन चित्र फोटो बने रहे। श्राद्ध-तर्पण का सिलसिला कुछ दिन चला। दो-तीन पीढ़ी तक बेटे-पोतों को नाम याद रहे। पचास वर्ष भी पूरे न हो पाये कि सब जगह से नाम-निशान मिट गया। अब किसी को बहुत कहा जाये कि इस दुनिया में 'मैं' पैदा हुआ था। बड़े अरमानों के साथ जिया था, जीवन को बहुत सँजोया, सँभाला था, उसके लिए बहुत कुछ किया था, पर वह सारी दौड़, धूप ऐसे ही निरर्थक चली गई। मेरी काया तक ने मेरा साथ न दिया, जिसमें मैं पूरी तरह घुल गया था। जिस काया के सुख को अपना सुख और जिसके दुःख को अपना दुःख समझा। सच तो यह है कि मैं ही काया था और काया ही मैं था। हम दोनों की हस्ती एक हो गई थी, पर यह क्या अचंभा हुआ, मैं अभी मौजूद हूँ।

वायुभूत हुआ आकाश में मैं अभी भी भ्रमण कर रहा हूँ, पर वह मेरी अभिन्न सहचरी लगने वाली काया न जाने कहाँ चली गई ? अब वह मुझे कभी नहीं मिलेगी क्या ? उसके बिना मैं रहना नहीं चाहता था, रह नहीं सकता था, पर हाय री निर्दय नियति। तूने यह क्या कर डाला ? काया चली गई। माया चली गई। मैं अकेला ही वायुभूत बना भ्रमण कर रहा हूँ। एकाकी—नितांत एकाकी। जब

काया ने ही साथ छोड़ दिया तो उसके साथ जुड़े हुए परिवारी भी क्या याद रखते—क्यों याद रखते ? याद रखे भी रहे हों तो अब उससे अपना बनाना भी क्या है ?

मैं काया हूँ। यह जन्म के दिन से लेकर मौत के दिन तक मैं मानता रहा। यह मान्यता इतनी प्रगाढ़ थी कि कथा पुराणों की चर्चा में आत्मा और काया की पृथकता की चर्चा आये दिन सुनते रहने पर भी गले से नीचे नहीं उतरी थी। शरीर ही तो मैं हूँ—उससे अलग मेरी सत्ता भला किस प्रकार हो सकती है ? शरीर के सुख-दुःख के अतिरिक्त मेरा सब दुःख अलग क्यों कर होगा ? शरीर के लाभ में अंतर कैसे माना जाए ? यह बातें न तो समझ में आती थीं और न उन पर विश्वास जमता था। परोक्ष पर प्रत्यक्ष कैसे झुठलाया जाए ? काया प्रत्यक्ष है—आत्मा अलग है, उसके स्वार्थ, सुख-दुःख अलग हैं, यह बातें कहने सुनने भर की ही हो सकती हैं। सो रामायण-गीता वाले प्रवचनों की हाँ में हाँ तो मिलाता रहा, पर उसे वास्तविकता के रूप में कभी स्वीकार न किया।

पर आज देखता हूँ कि वह सचाई थी जो समझ में नहीं आई और वह झुठाई थी, जो सिर पर हर घड़ी सवार रही। शरीर ही मैं हूँ, यही मान्यता—शराब की खुमारी की तरह नस-नस में भरी रही। बोतल छानता रहा तो वह खुमारी उतरती भी कैसे ? पर आज आकाश में उड़ता हुआ वायुभूत—एकाकी—मैं' सोचता हूँ। झूठा जीवन जिया गया। झूठ के लिए जिया गया, झूठे बनकर जिया गया। सचाई आँखों से ओझल ही बनी रही। मैं एकाकी हूँ, शरीर से भिन्न हूँ। आत्मा हूँ। यह सुनता जरूर रहा, पर मानने का अवसर ही नहीं आया। यदि उस तथ्य को जाना ही नहीं, माना भी होता तो वह अलभ्य अवसर जो हाथ से चला गया, इस बुरी तरह न जाता। जीवन जिस मूर्खतापूर्ण रीति-नीति से जिया, वैसा न जिया जाता।

शरीर मेरा है—मेरे लिए है, मैं शरीर नहीं हूँ; यह छोटी-सी सचाई यदि समय रहते समझ में आ गई होती तो कितना अच्छा होता ? तब मनुष्य जीवन जैसे सुरदुर्लभ सौभाग्य का लाभ लिया गया होता, पर अब क्या हो सकता है ? अब तो पश्चात्ताप ही शेष है। भूल भरी मूर्खता के लिए न जाने कितने लंबे समय तक रुदन करना पड़ेगा ?

● शरीर ही नहीं आत्मा को भी देखें

शरीर और आत्मा की पृथकता को जानते बहुत हैं, पर मानते कोई-कोई ही हैं। मरने के बाद भी जीवन का अस्तित्व बना रहता है, इसे प्रत्येक धर्मावलंबी मानता है। हिंदू, धर्म में पुनर्जन्म की मान्यता को पूरी तरह स्वीकार किया गया है। ईसाई, मुसलमान पुनर्जन्म तो नहीं मानते, पर मरणोत्तर जीवन स्वीकार करते हैं। शरीर न रहने पर भी आत्माओं का बना रहना और ब्रह्म-लोक में प्रलय के दिन उनके क्रियाकलाप को उचित-अनुचित ठहराया जाना उनके यहाँ भी स्वीकारा गया है। इन सभी स्थितियों में मृत्यु हो जाने के बाद भी आत्मा का अस्तित्व बने रहने की बात को माना गया है।

अतींद्रिय विज्ञान भी क्रमशः इसी निष्कर्ष की ओर बढ़ रहा है कि कुछ समय पूर्व भौतिक विज्ञानवेत्ता शरीर से पृथक् कोई स्वतंत्र आत्मा न होने की जिस बात को जोरों के साथ कहते रहे हैं, अब वह बात कुछ दमदार नहीं रही। पूर्वजन्मों की स्मृतियों वाले बालक उन ईसाई और मुसलमान परिवारों में भी पाये गये हैं, जिनकी परंपरा पूर्वजन्म स्वीकार न करने की ही रही है। कितने ही बालक संगीत आदि की ऐसी अद्भुत प्रतिभा अति न्यून आयु में ही प्रदर्शित करते हैं, जिनका मानव मस्तिष्क-विकास के स्वाभाविक विकास के साथ कोई तालमेल नहीं खाता। इन अद्भुत उदाहरणों

का समाधान "पूर्व जन्मों की विद्या का अनायास प्रकटीकरण" मानने के अतिरिक्त और किसी प्रकार नहीं होता।

भूत-प्रेतों के अस्तित्व को विज्ञ समाज में अंधविश्वास और वहम भर माना जाता रहा है; पर कठोर अन्वेषण की परीक्षा—कसौटी पर खरे उतरने वाले प्रमाण सामने आये हैं, जिनमें भूतात्माओं के अस्तित्व से इनकार करने की गुंजायश नहीं रहती। प्रचलित भूतवाद के ढकोसलों में बहुत कुछ 'वहम' हो सकता है, पर यत्र-तत्र ऐसे भी प्रमाण सामने आते हैं—जिन्हें देखते हुए मरण के उपरांत भी आत्माओं के किसी रूप में बने रहने और हलचलें करने की बात को स्वीकार करना ही पड़ता है।

नवजात शिशुओं में माता का दूध पीने का स्थान ढूँढ़ निकालना आदि कितनी ही ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जिन्हें देखते हुए यही मानना पड़ता है कि पूर्वसंचित ज्ञान के बिना यह सब अनायास ही नहीं हो सकता। आनुवांशिकी-विज्ञान में पैतृक ज्ञान के फलित होने का प्रतिपादन अवश्य है, पर वह भी यहाँ आश्चर्यचकित है कि बिना प्रशिक्षण या बिना आधार के जीवधारियों के बालक कैसे जीवनोपयोगी रीति-नीति विकसित कर लेते हैं ? पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक आते-जाते रहने वाले पक्षी किस प्रकार मार्ग की दुर्लभ्य कठिनाइयों को नपे-तुले ढंग से पार करते हैं और कुछ विशेष प्रकार की ईल जैसी मछलियाँ कैसे सहस्रों मील की यात्रा करके प्रणय-प्रजनन के लिए उपयुक्त स्थान पर जातीं और फिर वर्षों में पूरी होने वाली उस लंबी यात्रा को पूरी करके यथास्थान वापस लौटती हैं ? प्राणियों के सहज ज्ञान की शृंखला इतनी विलक्षण है कि वंशानुक्रम की संभावनाएँ उसका समाधान नहीं कर पातीं। जीव-विज्ञानी अब यह सोचने लगे हैं कि इस संचित ज्ञान का आधार जीवधारियों के पुनर्जन्म से संबंधित होना चाहिए।

जो हो, किसी न किसी आधार पर प्रायः हर वर्ग का व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि मृत्यु के बाद ही जीवन का अंत नहीं हो जाता, वरन् पीछे भी बना रहता है। शरीर के बिना भी जो जीवित रहता है, उसे आत्मा ही कहा जाएगा। इस प्रकार यह मरणोत्तर जीवन की मान्यता आस्तिकों तक ही सीमित नहीं रही, वरन् नास्तिक वर्ग भी भौतिक प्रमाणों के आधार पर इस तथ्य को क्रमशः स्वीकार करता चला जा रहा है।

प्रश्न यह है कि जब शरीर से पृथक् आत्मा के अस्तित्व की जानकारी प्रायः सभी को है और हल्के-भारी मन से उस तथ्य को किसी न किसी रूप में स्वीकार हो जाना है, तो हमारा यह प्रयास क्यों नहीं होता कि आत्मा के ऐसे स्वार्थों की ओर भी ध्यान दिया जाये, जो शरीर से ही जुड़े हुए नहीं हो सकते। शरीर-सुख में इंद्रिय-जन्य वासनाओं की तृप्ति ही मुख्य है। मन की माँग और आदत का पोषण करने वाली वस्तुओं तथा परिस्थितियों को जुटाने की रहती है। मोटे रूप से वासना और तृष्णा ही शरीर-सुख के दो आधार पाये जाते हैं, किंतु देखा जाता है कि जिनके पास यह साधन प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं, उनका भी अंतःकरण इन उपलब्धियों से संतुष्ट नहीं होता; वरन् बहुत कुछ मिलने पर भी अशांत, अतृप्त और उद्विग्न ही बना रहता है। अंतरंग के मर्मस्थल में यह असंतुष्ट सत्ता कौन है ? निस्संदेह इसे आत्मा ही कहा जायेगा।

शरीर की माँग—भूख, वासना और तृष्णा के साधन जुटने पर तृप्त होनी चाहिए। होती भी है, भरपेट स्वादिष्ट आहार मिल जाने पर फिर उसकी अधिक मात्रा खाते नहीं बनती। काम-सेवन आदि की भी एक स्वल्प सीमा है। तृप्ति के बाद उस संदर्भ में भी जी ऊब जाता है, यही बात अन्य सब इंद्रियों के बारे में भी है। तृप्ति के साधन जुट जाने के बाद भी जो घोर अतृप्त पाया जाता

है, वह अंतरात्मा ही है। उसकी आकांक्षाएँ शरीर से भिन्न हैं। जब तक उन्हें पूरा करने के साधन न जुटें, तब तक उनका असंतुष्ट रहना स्वाभाविक भी है। शरीर और आत्मा की भिन्नता और उनके पारस्परिक संबंधों, स्वार्थों को समझने का नाम ही अध्यात्म है। जब तक यह भिन्नता समझी-स्वीकारी न जाये, तब तक मात्र शरीर का पोषण करने वाले प्रयास ही होते रहते हैं। आत्मा की स्थिति और आवश्यक समझे बिना उसके लिए कुछ सोचा-किया भी कैसे जाये ?

इसे एक मनोवैज्ञानिक चक्रव्यूह ही कहना चाहिए कि हम अपने आपको भूल बैठे हैं। अपने आपको अर्थात् आत्मा को। शरीर प्रत्यक्ष है, आत्मा अप्रत्यक्ष। चमड़े से बनी आँखें और मज्जा-तंतुओं से बना मस्तिष्क केवल अपने स्तर के शरीर और मन को ही देख-समझ पाता है। जब तक चेतना-स्तर इतने तक ही सीमित रहेगा, तब तक शरीर और मन की सुख-सुविधाओं की बात ही सोची जाती रहेगी। उससे आगे बढ़कर इस तथ्य पर गंभीरतापूर्वक विचार कर सकना संभव ही न होगा कि हमारी—आत्मा का स्वरूप एवं लक्ष्य क्या है और आंतरिक प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए क्या किया जाना चाहिए ? क्या किया जा सकता है ?

चिरस्थायी और गहन अंतराल की तृप्ति को शांति कहते हैं और शरीर, मन की आकांक्षा पूर्ति सुख कहलाती है। लोग सुख के लिए उछल-कूद करते रहते हैं, किंतु शांति के संबंध में सोचते भी नहीं। फिर वह मिले कैसे ? अशांत अंतःकरण की जलन, सुख-साधनों की कुछ बूँदों से शांत नहीं हो सकती। यही कारण है कि धनाधीश, सत्ताधारी और सम्मानित व्यक्ति आंतरिक दृष्टि से विक्षुब्ध ही बने रहते हैं। सूक्ष्म तत्त्वों को देखने, समझने के लिए एक विशेष दिव्य-दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है, अध्यात्म की भाषा में उसे ऋतंभरा प्रज्ञा कहते हैं। गायत्री मंत्र में इसी दिव्य प्रकाश

को सविता का भर्ग मानकर उपास्य ठहराया गया है। यह दिव्य-दृष्टि जगे तो शरीर और मन के घेरे से ऊँचे उठकर वस्तु स्थिति को देखना—समझना संभव हो सकता है।

मोटी दृष्टि हमें शरीर और मन की परिधि तक ही सीमित रखती है। स्थूल पदार्थों के चिंतन तक ही उसकी पहुँच है। आत्म-कल्याण की बात उस दृष्टि से सोची जाये तो पंच-तत्त्वों से बने धर्मोपकरणों का, तीर्थ-मंदिर, दान, उपवास जैसे साधनों का ही उपयोग करने की ही बात सूझती है।

आत्म-शांति का स्वरूप क्या हो सकता है ? उसकी कल्पना स्वर्ग में आहार-निवास तथा उपभोग के प्रचुर साधनों की परिधि तक ही विचरण करती है। मानो मरने के उपरांत भी आत्मा वर्तमान शरीर को ही धारण किये रहेगी और उन्हीं प्रसाधनों के उपभोग से काम चलेगा। यह बात सूझती ही नहीं कि जब वासना-तृष्णा की साधन-सामग्री इस लोक में तृप्ति न दे सकी तो तथाकथित स्वर्ग में बताई गई सुख-सामग्री से आत्मा का क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? इस चिंतन को बचकाना ही कहना चाहिए कि आत्म-शांति की आंतरिक तृप्ति के संदर्भ में भी वासना-तृष्णा के साधन जुटाने वाले तथाकथित स्वर्गीय परिस्थितियों में ही आनंद और संतोष मिलने की बात सोचें।

आत्मा एक दिव्य चेतना स्फुलिंग है—जिसे भावनात्मक उल्लास के साधनों में ही तृप्ति मिल सकती है। सद्भावनाओं से प्रेरित सत्प्रवृत्तियों में ही आत्मा की शांति का उद्गम केंद्र है। उत्कृष्ट स्तर का चिंतन जब कार्यरूप में परिणत होता है, तब वह परिस्थिति बनती है, जिसमें आत्मा को शांति एवं तृप्ति प्राप्त हो सके। इस प्रकार के आनंद की आरंभिक झाँकी स्वाध्याय और सत्संग में मिल सकती है, जो काय-कलेवर और आत्मा की मित्रता का—उनके पारस्परिक संबंधों का विवेचन-विश्लेषण कर सके एवं

वासना-तृष्णा की सुख-लिप्सा से ऊँचे उठकर उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता अपनाकर, आंतरिक उल्लास की उपलब्धि का मार्ग-दर्शन कर सके। विषय-चर्चा से जिस प्रकार कानों को रस मिलता है, मनोरम दृश्य देखकर आँखें जिस प्रकार मुदित होती हैं, उसी प्रकार आत्म-चेतना को उस उद्‌बोधन में प्रसन्नता मिलती है, जिसके आधार पर अंतःकरण को सद्‌भावनाओं से ओत-प्रोत बनाया जा सके। आत्म-शांति का द्वार तब खुलता है, जब सत्प्रवृत्तियों से भरी-पूरी गतिविधियाँ अपनाकर यह अनुभव किया जाता है कि जीवन के स्वरूप और लक्ष्य के अनुरूप गतिविधियाँ अपनाकर अपूर्णता से पूर्णता की ओर कदम बढ़ते चल रहे हैं। उच्च भावनाओं के अनुरूप क्रियाकलाप जब बन पड़ता है तो जीवन-क्रम का वह स्वरूप बन जाता है, जिसमें आत्मा को शांति और तृप्ति प्राप्त हो सके, वह भव-बंधनों से मुक्त होकर नर से नारायण् बन सके।

शरीर और आत्मा की भिन्नता को जानना उत्तम है, पर पर्याप्त नहीं। उस ज्ञान का लाभ तब है, जब काय-कलेवर के उचित, आवश्यक स्वार्थों तक ही सीमित रहा जाये और अपनी शेष शक्ति को आत्मिक-शांति की, आत्मिक-तृप्ति की, आत्मिक-प्रगति की दिशा में नियोजित किया जाये। कहना न होगा कि यह प्रयोजन उत्कृष्ट—चिंतन और आदर्श कर्तृत्व अपनाने से ही पूरा हो सकता है। जब आत्मा और शरीर की भिन्नता को—उनकी विभिन्न आवश्यकताओं को समझ ही नहीं लिया जाता, वरन् शरीर की तुलना में आत्मा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए आत्म-कल्याण के प्रयास में तत्पर हुआ जाता है, तब यह माना जाता है कि आत्म-ज्ञान की दिव्य किरणें अंतःकरण में झाँकने लगीं और आत्मा का स्वरूप जाना ही नहीं गया, वरन् उसका लक्ष्य भी माना गया।

आत्मा-परमात्मा की चर्चा वाग्-विलास के लिए आये दिन होती रहती है। उसकी सार्थकता तभी है, जब शरीरगत स्वार्थों को सीमित करके आत्म-कल्याण के लिए आवश्यक रीति-नीति अपनाने की आकुलता उभरने लगे।

● आत्मा ही विद्या है

एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया—आचार्य प्रवर ! विद्या और अविद्या में भेद क्या है ? श्वेताश्वतरोपनिषद् का आचार्य उत्तर देता है—

"क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या।"

हे तात ! नाशवान् चीजों का संबंध अविद्या से है तथा अविनाशी आत्मा ही विद्या रूप है।

● सूक्ष्म शरीर

इसी उपनिषद् में अविनाशी आत्मा की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि—

अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः
संकल्पाहंकारसमन्वितो यः।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव
आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः।।
वालाग्रशतभागस्य शतध कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ५।८-९

अर्थात्—हे तात ! वह अँगूठे जितना लघु होकर भी संकल्प-विकल्प युक्त (अर्थात् सोचता-विचारता है) तथा अपनी बुद्धि के गुण से और श्रेष्ठ कर्मों के गुण से सुई के अग्रभाग जैसे आकार वाला हो गया है। ऐसा सूर्य के समान तेजस्वी आत्मा भी

ज्ञानियों ने देखा है। बाल के सौवें अंश से भी सौवें अंश परिमाण वाला भाग ही प्राणी का स्वरूप जानना चाहिए। वह सूक्ष्माति सूक्ष्म परिमाण वाला आत्मा असीम गुणों वाला हो जाता है।

इन दो ऋचाओं में शास्त्रकार ने जीवन के विराट्-दर्शन को सूत्र-रूप में पिरो दिया है। प्रकट है कि शरीर दो प्रकार के परमाणुओं से बनता है; एक होते हैं जड़ दूसरे चेतन। जड़ परमाणु चूँकि स्थूल हैं, इसलिये वह दिखाई देते हैं; किंतु चेतना एक प्रकार की तरंग, शक्ति और प्रकाश रूप है और देह में इस प्रकार सोखी हुई है, जिस प्रकार सूखी मिट्टी का ढेला जल को जज्ब (सोंख लेता है) कर लेता है। उसके अस्तित्व का प्रमाण बुद्धि है, उसी के न रहने पर शरीर सोचने-विचारने की क्रियाएँ बंद कर देता है। इस शक्ति का सांसारिक प्रयोजनों में खर्च करते रहने से वह नष्ट होती रहती है और जीव छोटा से छोटा, शरीर से भी और योनियों से भी, होता चला जाता है। अनेक कल्पित रूपों में वह अनेक शरीरों में तब तक भ्रमण करता रहता है, जब तक श्रेष्ठ कर्मों के गुण से वह फिर से शक्ति संचय करता हुआ सूर्य के समान असीम और तेजस्वी नहीं हो जाता। यह भी कहा है कि ज्ञानियों ने उसे देखा है—ज्ञानियों ! संबोधन का अर्थ ही है ज्ञान—अर्थात् वह ज्ञान से ही देखा जा सकता है। ज्ञान कोई पदार्थ नहीं है, वह निरपेक्ष अवस्था है; अर्थात् जिस समय पदार्थ, समय, गति और कारण सभी एकाकार हो जाते हैं, ध्यान की उसी अनुभूति का नाम ज्ञान है। ध्यान द्वारा ही वह आत्मा अपने प्रकाश रूप में दिखाई देता है।

आज का विज्ञान यों आत्मा के अस्तित्व तक पहुँच गया है, पर इसी ध्यान और अनुभूति (ज्ञान) के अभाव में वह इस तत्त्व को मानने को तैयार नहीं होता। मनुष्य शरीर जिन छोटी-छोटी प्रोटोप्लाज्मा की ईंटों से बना है, वह दो भागों में विभक्त है—(१) नाभिक (न्यूक्लियस) (२) साइटोप्लाज्मा। इसके अंतर्गत

जल, कार्बन, नाइट्रोजन, आकाश आदि सभी पंच भौतिक ठोस, द्रव तथा गैस अवस्था वाले पदार्थ पाये जाते हैं। विभिन्न प्राणधारियों का यहाँ तक कि मनुष्य-मनुष्य के साइटोप्लाज्मा में फर्क होता है। यह वंशानुगत आहार पद्धति और जलवायु आदि पर आधारित है और परिवर्तनशील भी है। आहार के नियमों तथा एक स्थान से दूसरी जलवायु वाले स्थान में परिवर्तन के फलस्वरूप हमारे शरीरों के स्थूल भाग में अंतर आ सकता है, पर अभी तक चेतन की अर्थात् नाभिक की क्रियाओं पर विज्ञान कोई नियंत्रण नहीं पा सका। अलबत्ता वैज्ञानिक शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि नाभिक में ही मनुष्य की सारी बौद्धिक चेतना काम करती है। उसमें न केवल अमर व अविनाशी गुण सूत्र विद्यमान हैं, वरन् वह सूत्र सारे ब्रह्मांड को नाप सकने की क्षमता से परिपूर्ण हैं। सारे शरीर में यह चैतन्य तत्त्व एक शक्ति, एक तरंग की भाँति विद्यमान है; उसी के न रहने पर शरीर नहीं रहता।

यह चेतना ही है जो मनुष्य शरीर से लेकर सृष्टि के स्थूल कणों तक में व्याप्त हो रही है। जहाँ तक चेतना का अंश प्राकृतिक परमाणुओं से शक्तिशाली होता है, वहाँ तक तो जड़ और चेतन का अंतर स्पष्ट प्रतीत होता रहता है; पर एक अवस्था ऐसी आती है जब जड़ता चेतनता पर पूरी तरह घटाटोप हो जाती है। वही अवस्था है जब चेतना पूर्ण रूप से जड़ गुणों वाली अर्थात् कंकड़-पत्थर जैसी स्थिति में चली जाती है। मुख्य रूप से सृष्टि की चेतना एक ही है, पर वह गुणों के द्वारा क्रमशः जड़ होती चली गई है। जो जितना जड़ हो गया वह उतना ही उपभोग्य हो गया, पर जिसने अपनी चेतना का जितना अधिक विकास किया; वही उतना उपभोक्ता होता चला जाता है।

विकासशास्त्रियों ने मनुष्य को अन्यान्य जीवों का विकसित कि रूप बताया है। कहा नहीं जा सकता कि यह सिद्धांत कितना

सच है ! किंतु उन्होंने एक शरीर से दूसरे शरीर में विकास की जो कड़ियाँ बैठाई हैं, वह दरअसल सराहनीय और परिश्रम का काम था। इसी सिद्धांत से आज यह भी पुष्ट किया जा सकता है कि यह आत्मा ही जड़ व चेतन में सर्वत्र गतिशील है। पेड़, पौधों को जड़ और चेतन के बीच की नीचे की कड़ी कहा जा सकता है और जीवित-ग्रहों को उच्च कड़ी। यह प्रतिपादन ही जड़ता से असीम चेतनता के विकास का प्रमाण माना जा सकता है।

यह चेतना जड में भी जाती है, इसका प्रमाण है वृक्ष। वृक्ष को शास्त्रों में जड़ व चेतन की संधि योनि माना गया है। यलोस्टोन नेशनल पार्क (अमरीका) में जहाँ उबलता पानी पृथ्वी से निकलता है, वहाँ पर चारों ओर लाल रंग का किनारा बन गया है। बहुत दिनों तक यह लाल रंग वैज्ञानिकों को हैरान किये रहा। ऐसा किन्हीं जलाशयों के किनारे नहीं मिलता, फिर इस लाल रंग का रहस्य क्या है ? यह जानने के लिए शोध प्रारंभ हुई; तब पता चला कि यह काई न होकर जीवित पदार्थ है। इतनी तेज गर्मी में जहाँ कि मनुष्य का हाथ झुलस जाता है, जीवन का अस्तित्व वैज्ञानिकों के लिए आश्चर्य की घटना थी। इस आश्चर्य में एक और भी आश्चर्य बाद में समझ में आया, वह यह था कि इस जीवित पदार्थ में जीवन और निर्जीवन दोनों के गुण विद्यमान हैं। यह फायलस स्यनोफाइटावर्ग की एक "अलगी" है। सामान्यतः "अलगी" में नीला हरा-सा रंगीन द्रव (पिगमेंट) क्लोरोफिल के साथ रहता है, पर कुछ में लाल रंग का भी द्रव होता है।

फायलम यूग्लेनोफाइटा में भी पौधे व जंतुओं दोनों के गुण पाये जाते हैं। इसमें "क्लोरोफ्लास्ट" (इसी में क्लोरोफिल नामक हरा द्रव्य होता है, जो मुख्यतः वृक्षों का गुण है) रहता है, वह इसके पौधा होने का प्रमाण है, लेकिन जिस प्रकार पौधों के कोशों (सेल्स) में दीवार (सेलवाल) होती है, उस तरह की दीवार इनमें नहीं होती

वरन् इनके चारों ओर पहुँचा भोजन एन्जाइम्स के द्वारा पचाया जाता है। एन्जाइम्स ये स्वयं निकालते हैं। यह भोजन अँधेरे में पचा सकते हैं। इनकी वृद्धि भी एक कोश से दूसरे कोश में होती है। कोशीय भित्ति (सेलवाल) के स्थान पर इनमें लचीली कोशीय झिल्ली होती है। वह ठोस भूमि पर संकुचित होती और फैलती है तो इस क्रिया द्वारा वह चल भी लेती है। इनमें "आई स्पॉट" भी होता है, जिससे यह विश्वास किया जाता है कि यह देखते भी हैं। इसके ही पास में एक छिद्रवाहिनी (वोक्यूल) होती है, वह पानी व भोजन चूसने तथा निकालने का भी काम करती है। वोक्यूल ज्यादातर एक कोशीय जंतुओं में होता है। इनमें एक जीवधारी के पोषण (न्यूट्रिशन), ग्रहण, पचाना (हाइजिनिक) तथा लैंगिक प्रजनन (सैक्सुअल रिप्रोडक्शन) गुण भी होते हैं। इन सभी उदाहरणों से यह विदित होता है कि जिसे वनस्पति घटक माना जाता है, वह भी एक जीव की ही कोई अवस्था है। इसी प्रकार धीरे-धीरे अपनी चेतनता के रहे-सहे अंश को छोड़ता हुआ एक दिन वह पूर्ण जड़ स्थिति में चला जाता है।

जीवात्मा के उच्च श्रेणी विकास का प्रमाण है, जीवित ग्रहों में "प्लाज्मा" की उपस्थिति। पृथ्वी के सभी जीवधारियों के शरीर ठोस और द्रव पदार्थों से बने हैं। इन्हीं की एक अवस्था है गैस। एक पदार्थ का आयतन जितना सघन होगा वस्तु उतनी ही ठोस होगी, पर जितना-जितना वह द्रव तथा गैस रूप में आती जायेगी, उसका आयतन बढ़ता जायेगा। ठोस की शक्ति से गैस की शक्ति बड़ी होती है, पर गुणों की दृष्टि से गैस में भी ठोस के गुण रहते हैं। वैज्ञानिक अब यह भी मानने लगे हैं कि जीवन केवल ठोस स्थिति में ही नहीं, द्रव व गैस की अवस्था में भी रह सकता है। वैज्ञानिकों को वह प्रमाण मिले हैं कि जब पृथ्वी तप्त तवे के समान जल रही थी, तब भी एक कोशीय जीव पृथ्वी पर उपलब्ध थे और जब एक

नई शक्ति "प्लाज्मा" के ज्ञान ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि यदि गैस स्थिति में जीवन रह सकता है, तो प्लाज्मा में भी रह सकता है। प्लाज्मा "प्राण शक्ति" का वैज्ञानिक नाम है। इसे सूक्ष्म शरीर या प्रकाश शरीर कहा जाता है। विज्ञान के अनुसार प्लाज्मा कोई विशिष्ट वस्तु न होकर ठोस, द्रव तथा गैस की तरह ही पदार्थ की चौथी अवस्था है। आकाश में चमकते हुए तारे प्लाज्मा ही हैं। यह प्लाज्मा एक प्रकार का ईंधन या आहार ही है। तारागण उसे किस प्रकार ग्रहण करके अपना जीवन धारण किये हुए हैं, अभी तक वैज्ञानिक यह जानने में समर्थ नहीं हो पाये, पर विशिष्ट तत्त्वों से प्लाज्मा का निर्माण करके उन्होंने यह सिद्ध अवश्य कर दिया है कि जिस प्रकार हमारे शरीरों में नाभिकीय द्रव्य की उपस्थिति से ही साइटोप्लाज्मा का निर्माण होता है, उसी प्रकार सितारों में भी नाभिकीय गुण होने चाहिए। यदि ऐसा है तो फिर उन्हें भी जीवधारी ही मानना चाहिए जैसा कि भारतीय आर्ष-ग्रंथों में सूर्य को आत्मा एवं चंद्रमा, पृथ्वी आदि को भी देवता कहा है।

प्लाज्मा अत्यंत सूक्ष्म होने पर भी अत्यंत शक्तिशाली पदार्थ है। एक पौंड नाइट्रोजन के प्लाज्मा से एक इंजन पूरे एक वर्ष तक चल सकता है। गैस को अत्यधिक गर्म करने से इलेक्ट्रॉन तीव्र गति करते हैं और एक परमाणु का इलेक्ट्रॉन जब टूटकर अलग हो जाता है तो वह अन्य परमाणु आयन बन जाता है। यह आयनीभूत गैस ही प्लाज्मा कहलाती है। आजकल विद्युत् तारों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थानों पर ले जाई जाती है। पर प्लाज्मा के बारे में ज्ञान से वैज्ञानिक यह मानने लगे हैं कि यह विज्ञान जब पूरी तरह विकसित हो जायेगा तो तारों के झंझट से मुक्ति मिल जायेगी तब केवल चुंबकीय आकर्षण द्वारा कहीं भी शक्ति पैदा कर ली जा सकेगी।

प्लाज्मा एक प्रकार का प्रकाश और ताप युक्त प्राण ही है। मनुष्य शरीर से लेकर अन्य चेतना धारियों में वही शक्ति जीवन का आधार है। इसी शक्ति के पतन से मनुष्य लघुतम बनता है तो इसी के विकास से वह सूर्य जैसी महान् गुणों वाली चेतना में अपना विकास करके विराट् बन जाता है। इसी का नाम विद्या है। इस विद्या की प्राप्ति के लिए ही भारतीय आचार्यों ने अनेक साधनाएँ विकसित की हैं। प्लाज्मा की शक्ति से ही अनुमान किया जा सकता है कि आत्म-शक्ति के सूक्ष्म या प्रकाशीय विकास द्वारा मनुष्य कितना समर्थ व शक्तिशाली बन सकता है, जबकि आज का विज्ञान केवल जड़ की व्याख्या और उसी के यांत्रिक नियंत्रण में लगा है, यही अविद्या है। अविद्या को हटाकर विद्या की प्राप्ति कर सकें तो शास्त्रकार के कथन के अनुसार अँगुष्ठ मात्र प्राणी सूर्य जैसा विराट् बन सकता है।

● वहाँ न वर्ण भेद है, न लिंग भेद

आत्मा के पशु-पक्षियों, वृक्ष, वनस्पति में भी होने की बात पर कितने विवाद हैं, कहा नहीं जा सकता। इसका एक ही कारण है कि कोई भी दर्शन आत्म-सत्ता का सर्वमान्य दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं कर सका। अनुभूत और प्रायोगिक दर्शन होने के कारण इस प्रश्न को केवल भारतीय योग विज्ञान ही सुलझाता रहता है। एक ही वस्तु का अनेक रूपों में रूपांतर किसी समय में समझ में न आने वाली बात हो सकती है, पर आज तो वैज्ञानिक पदार्थ के स्थूल, वायुभूत तथा प्लाज्मा जैसे अनेक स्वरूप जान गये हैं। अतएव रूपांतर कोई समस्या नहीं रही। फिर भी आत्मा नर है या नारी, यह प्रश्न अक्सर उठता रहता है। तात्त्विक दृष्टि से प्रश्न में कोई वजन न होने पर भी जिज्ञासा का समाधान आवश्यक समझा गया।

● आत्मा का अस्तित्व

आत्मा न नर है, न नारी। वह एक दिव्य सत्ता भर है। समयानुसार—आवश्यकतानुसार वह तरह-तरह के रंग-बिरंगे परिधान पहनती-बदलती रहती है। इसी को लिंग व्यवस्था समझना चाहिए। सर्दी की ऋतु में गरम और भारी कपड़े पहनने की आवश्यकता अनुभव होती है और गर्मी में हल्के वस्त्र पहनने या नंगे रहने की इच्छा होती है। नर-मादा रूपी दो आवरण दो ऋतुओं के लिए हैं। आत्मा की जब जैसी रुचि होती है तब वह वैसे वस्त्र पहन लेता है। कभी गरम-भारी कभी ठंडे-झीने। कभी खट्टा स्वाद चखने की इच्छा होती है कभी मीठा।

दोनों के जीवन का अपना आनंद है और अपना स्तर देखे, समझे और अनुभव किये बिना आत्मा की तृप्ति नहीं होती। सो जब स्नेह, वात्सल्य, समर्पण, सेवा की प्रवृत्तियाँ उभारने की शिक्षा लेनी होती है, तो नारी के शरीर में प्रवेश करके उस तरह का अध्ययन, अनुभव, अभ्यास करना होता है और जब शौर्य, साहस, पुरुषार्थ, श्रम की कठोरता का शिक्षण आवश्यक होता है, तब उसे नर कलेवर पहनना पड़ता है।

मृदुलता और कठोरता के उभयपक्षीय समन्वय से जीवधारी की समग्र शिक्षा हो पाती है। यदि वह एक ही योनि में पड़ा रहे तो उसके आधे ही गुणों का विकास हो पायेगा और उस अपूर्णता के रहते सर्वांगीण पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त न हो सकेगा। अस्तु, भगवान् ने यह व्यवस्था बना रखी है कि जीवधारी कभी मादा शरीर में रहा करे, कभी नर में। यह परिवर्तन धूप-छाँह जैसे उभयपक्षीय आनंद की अनुभूति कराता है और जीवन के दोनों पहलुओं से परिचित ही नहीं, अभ्यस्त भी रखता है।

यह सोचना ठीक नहीं कि नर जन्म-जन्मांतरों तक नर ही रहेगा और नारी को नारी ही रहना पड़ेगा। अभ्यास और रुचि

परिपक्व हो जाए तो एक ढर्रा भी कई जन्मों तक चलता रह सकता है, पर यदि तीव्र उत्सुकता-उत्कंठा हो तो वह परिवर्तन अगले ही जन्म में हो सकता है। नर यदि नारी जैसी मनोभूमि और गतिविधियाँ अपनाकर उस तरह की उत्कंठा तीव्र करे तो अगला जन्म उसे नारी के रूप में भी मिल सकता है। इसी प्रकार नारी के लिए यह सर्वथा संभव है कि वह पुरुषोचित गतिविधियाँ और मनोवृत्तियाँ अपनाकर अगला परिवर्तन अपनी अभिलाषा के अनुरूप कर ले। यों प्रकृति के नियमानुसार बिना किसी प्रयत्न के भी यह परिवर्तन होते रहते हैं।

शरीरशास्त्री यह तथ्य भली प्रकार जान गये हैं, कि हर जीवधारी में नर और नारी की उभयपक्षीय सत्ता बीज रूप में विद्यमान रहती है। उसका जो पहलू उभरा रहता है उसी को समर्थ एवं सक्रिय रहने का अवसर मिलता है—और दूसरा पक्ष प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहता है। यदि उभार दूसरी दिशा में वह निकले तो सुप्त पक्ष जाग्रत् हो सकता है और जाग्रत् को सुषुप्ति में चला जाना पड़ता है।

सृष्टि में ऐसे अगणित जीवधारी विद्यमान हैं, जिनमें नर और नारी के दोनों पक्ष समान रूप से सक्रिय होते हैं। वे एक ही जीवन में कभी नर और कभी मादा बनते रहते हैं। जब उनका जी आता है, अपने संकल्पबल से वे नर बन जाते हैं और जब उमंग उठती है तो नारी स्वभाव ही नहीं, बिना किसी कठिनाई के नारी अंगों का भी विकास अधूरा नहीं होता, वरन् इस सीमा तक प्रखर होता है कि संतानोत्पादन भी भली प्रकार से हो सके। आज का नर कल नारी बनकर अपने पेट में गर्भ धारण करेगा और परसों बच्चे जनेगा, यह बात विचित्र लगती है, पर है सर्वथा सत्य। कितने जीवों में यही प्रवृत्ति है और वे एक ही जीवन में इस प्रकार के उभयपक्षीय आनंद की अनुभूतियाँ लेते रहते हैं। उनके जीवन समुद्र

में कभी नर का ज्वार आता है तो कभी नारी का भाटा। प्रकृति ने उन्हें इच्छानुसार आवरण बदलने की जो सुविधा दी है, वैसी ही यदि मनुष्यों को भी मिली होती तो वे भी इस प्रकार का आनंद लाभ करते। इतना ही नहीं, नर और नारी के बीच असमानता की जो खाई बन गई है—उसके बनने का कोई कारण न रहता। फिर न कोई छोटा समझा जाता, न कोई बड़ा। किसी को किसी पर आधिपत्य जमाने की खुराफात भी न सूझती।

स्मिथ गोल्ड, रोश, हरीसन आदि प्राणिवेत्ताओं ने तितलियों की कलम एक-दूसरे को लगाकर उनका लिंग परिवर्तन कृत्रिम रूप से संभव बनाकर दिखाया है। विज्ञानी डब्ल्यू० हीरम्स ने मछलियों की कई जातियाँ उभयलिंगी पाई है और कुछ प्रयोगों में छोटे आपरेशन करके उन्हें परिवर्तित लिंग का बनाया है। पक्षियों में भी लिंग परिवर्तन के आपरेशन बड़ी मात्रा में सफल हुए हैं।

कुछ कीड़े होते हैं जो एक ही शरीर में बार-बार उभय लिंगी परिवर्तन करते रहते हैं। वे कभी नर बन जाते हैं, कभी मादा। कीट विज्ञानी प्रो० ओरटन ने ऐसे जीवों की खोज की थी, जो एक ही जन्म में कभी नर रहते हैं, कभी नारी। ओइस्टर ऐसे जंतुओं में अग्रणी हैं। वे मादा की तरह अंडे देने के बाद ही नर बन जाते हैं और उभयपक्षीय लिंग में रहने वाली विभिन्नताओं का आनंद लूटते हैं। आस्ट्रिना गिवासा, स्लग लाइयेकस जाति के जलचर भी उभयलिंगी रसास्वादन का क्रम परिवर्तन करते रहते हैं। लिमेष्ट्रिया पतंगा भी इसी स्तर का है। वह कभी नारी होता है तो कभी नर।

आयस्टर वर्ग-जाति का 'मोलस्क' घोंघा अपने लिंग परिवर्तन करता रहता है। कभी वह मादा होता है तो कभी नर। ४० साल की पूरी आयु यदि वह जी सके तो प्रायः एक दर्जन बार वह अपना लिंग परिवर्तन करता है।

सृष्टि में ऐसे जीव-जंतुओं की संख्या कम नहीं जो उभयलिंगी होते हैं। एक ही शरीर में शुक्र और डिंब उत्पन्न करने वाली ग्रंथियाँ होती हैं। जब उनमें प्रौढ़ता आती है तो प्रजनन स्राव अपने आप प्रवाहित होते हैं और रक्त संचार के सहारे उनको आत्मरति का आनंद तथा प्रजनन का लाभ मिल जाता है। ड्रोसोफिला मक्खी, हैव्रो ब्रेकन ततैये, सिल्क वर्म मोथ, वैनस मोथ, जिप्सी मोथ ओलोकेसपिस जैसे अनेक पतंगें उभयलिंगी होते हैं।

समझा जाता है कि नर और मादा का संयोग होना संतानोत्पादन के लिए आवश्यक है, पर यह मान्यता बड़े आकार वाले विकसित जीवों पर ही एक सीमा तक लागू होती है। छोटे जीवों में अगणित जातियाँ ऐसी हैं, जिनमें प्रजनन के लिए साथी की सहायता लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अपने शरीर में रहने वाली उभय योनियाँ समयानुसार आप ही संयोग बना लेती हैं और उस आत्मरति से ही प्रजनन का अध्याय पूरा हो जाता है।

प्रजनन क्रिया के लिए यौन संयोग के अतिरिक्त एक और भी तरीका है, अपने विकसित स्वरूप को विघटित कर देना। यह क्रिया वनस्पति जगत् में निरंतर होती रहती है। बीज गलकर अंकुर और पत्र-पल्लवों के रूप में विकसित होता है तथा एक से अनेक बनने का क्रम अपनाकर कालांतर में वही पुष्ट पौधा बनकर कितने ही नये बीज हर साल उत्पन्न करता है। यह अमैथुनी प्रजनन क्रिया वनस्पति जगत् की सर्वविदित परिपाटी है।

गन्ना, गुलाब आदि अगणित पौधे उनके टुकड़े करके गाड़ देने पर अलग-अलग पौधे बन जाते हैं। बड़, गूलर जैसे वृक्षों की बड़ी डालियाँ भी नये पेड़ का रूप धारण करती हैं। विकसित पुष्पों के पराग हवा में उड़कर एक से दूसरे तक पहुँचते हैं। मक्खियाँ और तितलियाँ भी उनका स्थानांतर करती रहती हैं, इस प्रकार

पराग युगल परस्पर योग-संयोग मिलाकर बिना रति क्रिया के अपनी वंश वृद्धि करते रहते हैं।

छोटे जीवों में भी वह गुण होता है कि वे अपने शरीर से अपने ही सरीखी नई संतति उत्पन्न कर सकें। यों दूसरी जाति की उत्पत्ति तो सहज ही हो जाती है। पेट में सड़ा अन्न मलकृमि बनकर विष्टा के साथ निकलता है। शरीर पर चिपका हुआ मैल जुँए, चीलर बनता है। जीवित या मृत शरीर का सड़ा हुआ मांस आँख से देखे जा सकने वाले कीड़ों के रूप में अनायास ही बदल जाता है। सड़े हुए फल और तरकारियों में भी उसी रंग-रूप के कीड़े रेंगते देखे जा सकते हैं। यह प्रजनन ही है। सड़न को रतिक्रिया तो नहीं कह सकते और न उससे सहधर्मी जीव उत्पन्न होता है; फिर भी इसे जीव उत्पादन तो कह ही सकते हैं। कीचड़ और गंदगी में मक्खी, मच्छरों और रेंगने वाले कृमियों का उत्पन्न होना इसी स्तर का प्रजनन है।

जिनकी गणना जीवधारियों में की जाती है, ऐसे प्राणी भी अपने शरीर के ही टुकड़े बिखेरकर अपनी जाति के नये प्राणी को जन्म देकर विधिवत् वंश-वृद्धि करते रहते हैं। इसलिए उन्हें जोड़ा ढूँढ़ने या रतिक्रिया का सहारा लेने की जरूरत नहीं पड़ती। अपना शरीर ही इसके लिए पर्याप्त होता है और उसी से उभयपक्षीय मिलन-संयोग से लेकर प्रजनन तक की सारी आवश्यकताएँ सुचारु रूप से संपन्न होती रहती हैं। 'अमीबा' और 'डायटम' जीव इसी स्तर के हैं। उनमें जब प्रौढ़ता आती है तो अपने ही शरीर को फुलाकर उनका भाग अलग छिटका देते हैं और वह एक स्वतंत्र प्राणी बनकर अपनी अलग वंश परंपरा का संचालन करता है।

जीवित कहे जाने वाले प्रत्येक जीवधारी या जीवाणु में मेटाबोलिज्म चयापचय प्रजनन शक्ति होती है। सृष्टि में जीवधारियों का उत्पादन-अभिवर्धन कैसे उत्पन्न हुआ ? इसका युक्ति संगत

एक मात्र उत्तर यही हो सकता है कि आदि जीवाणुओं में अपने आपको विखंडित करके संतानोत्पादन करने की सरलतम योग्यता विद्यमान थी। उसी के आधार पर जीवधारियों की संख्या बढ़ी और परिस्थितियों के अनुरूप उन्होंने अपनी काया तथा चेतना का विकास-परिष्कार किया। रतिक्रिया का प्रचलन तो बहुत बाद में—तब हुआ—जब प्राणधारी एक लिंगी न रहकर द्विलिंगी बन गये और उन नर-मादा की जननेंद्रियाँ स्पष्ट उभरीं तथा गर्भ धारण के योग्य हो गईं। इससे पूर्व अपने शरीर से विखंडित होकर ही पीढ़ियाँ बढ़ाने का प्रचलन था। इसके आगे—मध्यकाल में उभयलिंगी अंतःस्राव पुष्प-पराग की तरह जीवधारी नर-मादा परस्पर स्नेह-आलिंगन का क्रिया-कलाप गंध-मादकता के आधार पर करने लगे थे। उतने से ही उनमें प्रजनन उपयोगी हलचलें उठ खड़ी होती थीं और संतान होने लगती थी। यौन संसर्ग तो बहुत बाद की प्रगतिशीलता है।

सेलों के भीतर भरे न्यूलिक एसिड के माध्यम से पूर्वजों की शारीरिक, मानसिक विशेषताएँ संतान में हस्तांतरित होती हैं। एडमोसिन फास्टेट रसायन का होना प्रजनन योग्यता के लिए आवश्यक है। इन तत्त्वों को यदि प्राणियों में घटाया-बढ़ाया जा सके तो उनकी प्रजनन क्षमता का स्तर भी बदल सकता है। यह असंभव नहीं कि क्षुद्र-जीव अनभ्यस्त रतिक्रिया अपनाने लगें और सुविकसित प्राणी जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित हैं, अकेला-बिना सहचर के-बिना रतिक्रिया के सुयोग्य संतान का उत्पादन कर सकें।

पैंप्टाइड रसायन का यह विदित गुण है कि गरम करने पर वह पानी में घुलता है और ठंडा होने पर छोटे पिंड की शकल धारण कर लेता है। बाहर से उपयुक्त रासायनिक भोजन मिले और उपयुक्त ऊर्जा का वातावरण मिले तो उनमें विभाजन प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। इसी आधार पर जीवशास्त्री कृत्रिम जीवाणु

उत्पन्न करने और उनसे वंश-वृद्धि का उपक्रम आरंभ कराने के लिए प्रयत्नशील हैं।

आये दिन ऐसी घटनाएँ सामने आती रहती हैं, जिनमें नर के भीतर नारी के अथवा नारी के भीतर नर के यौन चिन्ह विकसित होते चले गये और स्थिति यहाँ तक पहुँची कि आपरेशन करके उनका लिंग परिवर्तन करना पड़ा। यह परिवर्तन इतना सफल रहा कि उन्होंने जोड़ा बनाया और सफल दांपत्य जीवन जीते हुए संतानोत्पत्ति भी की।

मनोविज्ञान और अध्यात्म विज्ञान के आधार पर यह सिद्धांत मान्यता प्राप्त है कि लिंग परिवर्तन के लिए मानवी प्रयत्न बहुत हद तक सफल हो सकते हैं। बहुत कुछ परिवर्तन तो इस जन्म में भी हो सकते हैं अन्यथा अगले जन्म में तो वह संभावना शत-प्रतिशत साकार हो सकती है। पुराणों में इस प्रकार के अगणित उदाहरण भरे पड़े हैं, जिनमें व्यक्तियों ने अपने संकल्प बल एवं साधना उपक्रम के द्वारा लिंग परिवर्तन में सफलता प्राप्त की है। इन दिनों भले ही वे उपचार विस्मृत-विलुप्त हो गये हों, पर तथ्य तो जहाँ के तहाँ ही रहेंगे। आत्मा के सुदृढ़ संकल्प और प्रयत्न यदि प्रखर हों तो किसी भी आत्मा के लिए अपना वर्तमान लिंग बदल लेने की पूरी-पूरी संभावना हो सकती है।

कभी-कभी किन्हीं पुरुषों में नारी प्रकृति और नारियों में पुरुष प्रकृति पाई जाती है। उनके हाव-भाव, स्वभाव एवं आचरण में इस प्रकार का अंतर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसका एकमात्र कारण यह है कि पिछले दिनों उनकी मंद इच्छा लिंग-परिवर्तन की तो रही, पर उनमें प्रौढ़ता-प्रखरता नहीं आई। यदि उनका संकल्प बल और प्रयत्न बलशाली रहा होता तो उन्हें इस प्रकार के आधे-अधूरे परिवर्तन का सामना न करना पड़ता। इतने पर भी उनका प्रवृत्ति परिवर्तन की दिशा में ही मन चलता रहे तो यह आशा की जा

सकती है कि इस विराम के उपरांत वे अपनी अभीष्ट मनोवांछा के अनुरूप लिंग परिवर्तन का लक्ष्य अगले जन्म तक पूरा कर लेंगे।

कभी-कभी ऐसी घटनाएँ भी सामने आई हैं, जिनमें पुरुष के शरीर से भी बच्चों का जन्म हुआ है। भले ही वे भ्रूण अविकसित रहे हों और भले ही वे जुड़वाँ भाई समझे जा सकते हों, पर उत्पत्ति तो नर शरीर से हो ही गई। इन उदाहरणों से यह तो सिद्ध होता ही है कि मात्र नारी के शरीर में ही नहीं—नर कलेवर में भी वह क्षमता मौजूद है कि गर्भ धारण करने से लेकर गर्भ-पोषण तक की क्रिया का संपादन कर सके। अवसर मिले तो इस संभावना का अधिक विकास भी हो सकता है और नारी की तरह ही नर भी प्रजनन कर्म कर सकने में समर्थ हो सकते हैं।

फ्रांस के एक १७ वर्षीय जीन जैक्यूस लोरेंट को छाती के दर्द की शिकायत थी। डॉक्टरों ने फेफड़े का ट्यूमर पाया और उसका ऑपरेशन किया। डॉक्टरों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने ट्यूमर के स्थान पर ३ पौंड ५½ औंस वजन का एक विकसित अंगों वाला बच्चा निकाला।

ब्रिटिश पैथोलॉजिस्ट ऐसोसिएशन ने एक भ्रूण को लड़के का जुड़वाँ भाई बताया है, जो गर्भ-काल में किसी प्रकार उसके शरीर में प्रवेश कर गया और वहीं बढ़ता-पलता रहा।

इसी प्रकार की एक घटना बरेली (उ० प्र०) के जिला अस्पताल में हुई। बदायूँ निवासी एक-दो वर्ष के बालक का ऑपरेशन पेट का ट्यूमर समझकर किया गया। पेट खोलने पर उसमें एक विकसित भ्रूण पाया गया, जिसे अधिक अन्वेषण के लिए सुरक्षित रख लिया गया।

नर के शरीर से बच्चे की उत्पत्ति की अनेकों घटनाएँ बहुचर्चित हैं और उनके विवरण पत्र-पत्रिकाओं में विस्तारपूर्वक छपे हैं। सन् ९६५६ में टोंक्यो अस्पताल में एक किशोर लड़के के पेट

का ऑपरेशन करके उसमें से ११ औंस का अपरिपक्व बच्चा निकाला था। बच्चे की टाँगें, बाल एवं शरीर के अन्य भाग स्पष्ट थे। उसी साल सन् १९५६ में उत्तर वियतनाम के हनोई अस्पताल में एक पुरुष का ऑपरेशन करके बच्चा निकाला था, जो जन्मते समय रोया भी था।

सन् १९५४ में पाकिस्तान के बहाबलपुर नगर के विक्टोरिया अस्पताल में डॉक्टरों ने एक पुरुष का पेट चीरकर उसमें से बच्चा भी निकाला था।

इन तथ्यों पर गहराई से विचार किया जाये तो इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि नर और नारी के कलेवर धारण करती और बदलती रहने पर भी आत्मा की स्थिति दोनों से ऊपर है अथवा उभयपक्षीय संभावनाओं से भरपूर है। जो आज नर है, कल उसे नारी बनना पड़ सकता है। इसी प्रकार नारी को नर की भूमिका संपादित करने का अवसर भी मिलता है। जब यह आवरण सामयिक है तो नर और नारी के बीच ऐसी दीवारें क्यों खड़ी की जायें, जिनमें अधिकार और कर्तव्य की खाई खड़ी हो। किसी को छोटा, किसी को बड़ा माना जाये। दोनों को मिल-जुलकर ऐसी समाज व्यवस्था बनानी चाहिए, जिससे बदलते रहने वाली लिंगीय परिस्थिति में किसी आत्मा को असुविधा अथवा अन्याय का अनुभव न करना पड़े।

❐ ❐

आत्मा-वैज्ञानिक प्रयोगशाला में

★ ★

वैज्ञानिक धारणा के अनुसार कोई भी व्यक्ति जैव-द्रव के सक्रिय परमाणुओं का समूह होता है, जो सारभूत रूप में करोड़ों वर्षों के जीव विकास क्रम को पुष्ट करता है। ये सक्रिय परमाणु सारे शरीर में, उसकी अनुभूतियों में और मस्तिष्क में केंद्रित होते हैं, इतना जान लेने के बाद विज्ञान अपने आप से प्रश्न करता है कि इन परमाणुओं की संरचना, गति और अनुभूतियों को रचने वाला, प्रेरणा देने और ग्रहण करने वाला कौन है ? उनका उत्तर होता है—मौन। भारतीय-दर्शन वहीं से अध्यात्म का आविर्भाव मानता है और कहता है कि वह आत्मा है, आत्मा। उसे ही जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

डा० टिमोदी लिपरी ने मन को ही सब कुछ माना और अध्यात्म की सत्ता वहीं तक स्वीकार की। मन एक रासायनिक तत्त्व है। अन्न के स्वभाव और गुण के अनुरूप उसका आविर्भाव होता है। मनश्चेतना के विस्तार तथा उसकी अभिव्यक्ति के लिए अनेक रासायनिक द्रव्यों का विकास हुआ है। भारतीय तंत्र और तिब्बती तांत्रिक साधनाओं में भी रासायनिक तत्त्वों के आधार पर मनश्चेतना के प्रसार और उसके द्वारा विलक्षण अनुभूतियों और दूरवर्ती ज्ञान को प्राप्त कर लिया जाता है। एलन गिंसबर्ग ने भी उसी की पुष्टि की है और उनका विश्वास है कि जीव-चेतना का अंत मन है, उसके आगे न कोई सूक्ष्म सत्ता है और न कोई अति मानस ज्ञान। पर अब पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने ही इन तांत्रिक साधनाओं के आधार पर अतींद्रिय और मनश्चेतना से परे किसी ऐसे तत्त्व का अस्तित्व स्वीकार करना प्रारंभ कर दिया है, जो सर्वद्रष्टा, शाश्वत, मुक्त और स्वेच्छा से भ्रमण और स्वरूप ग्रहण करने वाला है; जो साक्षी, चेतन और अपनी इच्छा से विकसित होने

वाला है। इस विश्वास की पुष्टि और शोध के लिए ही 'लीग फॉर स्पिरिचुअल डिस्कवरी' की स्थापना हुई है। यह संगठन अनेक घटनाओं के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है कि मनश्चेतना से परे भी कोई चेतन तत्त्व इस सृष्टि में विद्यमान है, शरीरधारियों का केंद्र और मूल भी वही है।

स्काटलैंड के एक मकान में एक अंग्रेज दंपत्ति रहते थे। दोनों को बहुत अधिक मदिरा पीने की आदत थी। १४ जुलाई, १८७६ को पति की मृत्यु हो गई। उसके दो वर्ष बाद ही पत्नी की भी अल्पायु में मृत्यु हो गई। अब इस मकान को कैप्टन मार्टिन नामक एक अंग्रेज ने किराये पर ले लिया और उसी में अपनी धर्मपत्नी तथा बच्चों के साथ रहने लगे।

एक दिन मार्टिन की स्त्री ने घर में एक काले वस्त्र धारण किये हुए स्त्री को देखा। उन्होंने समझा यह मेरी माँ है, जैसे ही वह उससे मिलने के लिए आगे बढ़ी कि वह स्त्री सीढ़ियों से ऊपर चढ़ गई और ऊपर के कमरे में जल रही मोमबत्ती बुझा दी। फिर उसके बाद कोई दिखाई न दिया। इसके कई दिन बाद वैसी ही छाया फिर दिखाई दी, पर प्रयत्न करने पर भी न तो उससे कोई बात-चीत की जा सकी, न उससे मिला ही जा सका। आगे बढ़ने पर ही वह छाया अदृश्य हो जाती। इस घटना को बाद में पड़ौसियों ने भी देखा और यह माना कि यह पूर्व अंग्रेज स्त्री की भटकती हुई आत्मा है। आत्माओं के इस तरह के क्रियाकलापों की घटनाएँ भारतवर्ष में बहुतायत से होती हैं।

प्रसिद्ध साहित्यकार लार्ड ब्रॉहम के जीवन की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना आत्मा के अस्तित्व पर प्रकाश डालती है। उनके एक मित्र थे, उन्हें आत्माओं के अस्तित्व के संबंध में जानने का बड़ा चाव रहता था। दोनों ऐसे लेख जिनमें कोई ऐसी जानकारी होती थी, ढूँढ़-ढूँढ़कर पढ़ते थे। उन्होंने सुना था कि भारतवर्ष में

कुछ ऐसे योगी हैं, जो मृतात्माओं के साथ साक्षात्कार कराते हैं। एक दिन इस पर दोनों मित्रों ने निश्चित किया—"हम में से जिसकी मृत्यु हो वह दूसरे से मिलने अवश्य आये।" यह बात मस्तिष्क में गहराई तक बैठ जाये, इसके लिए उन्होंने उँगली काटकर एक कागज में हस्ताक्षर भी किये।

कुछ दिन बाद मित्र सर्विस के लिए भारतवर्ष चला आया। इसके बाद १६ दिसंबर, १७६६ की बात है। लार्ड ब्रॉहम अपने स्नानागार पहुँचे, कपड़े उतारकर कुर्सी में रखे और दरवाजा बंद करके टब में स्नान करने लगे। ब्रॉहम साहब लिखते हैं—"जैसे ही मैंने टब से अपना सिर बाहर निकाला कि देखता हूँ, मेरे मित्र महोदय सामने कुर्सी पर बैठे हैं। दरवाजे बिल्कुल बंद थे, मैं घबरा गया कि वह कोई प्रेत तो नहीं है ! और इसके बाद मुझे जब होश आया तो कुर्सी में कोई नहीं था; दरवाजे पहले की तरह बंद थे। उसके ८-१० दिन बाद भारत से आया एक पत्र मिला, जिसमें यह लिखा था कि १६ दिसंबर के दिन मित्र की मृत्यु हो गई है। इस घटना से मुझे पूरा विश्वास हो गया कि मृत्यु के बाद भी आत्मा रहती है और जाग्रत् जीवन की उसमें तमाम स्मृतियाँ भी रहती हैं।"

विलियम हंटर नामक एक अंग्रेज की बहन अपने गाँव में रहती थीं और हंटर दूर किसी शहर में सर्विस करता था। एक दिन बहन रात में सो रही थी। उसने स्वप्न में देखा कि एक रेल आ रही है, उसका भाई पटरी पर आ गया, रेल उसे कुचलने वाली है। वह भयंकर चीत्कार करके अपने भाई को बचाने के लिए दौड़ी, पर वह तो स्वप्न था, भंग हो गया। न वहाँ कोई रेल थी और न कोई भाई।

दूसरे दिन सबेरे ही सूचना मिली कि उसका भाई रेल से कटकर मर गया है। यह घटना भी आत्मा के सूक्ष्म अस्तित्व और अमरता पर प्रकाश डालती है।

अहमद नगर जिले के श्री ऋषि महोदय के संबंध में पहले भी लिखा जा चुका है। वे मृत आत्माओं को बुलाकर उनसे बातचीत करने के आचार्य माने जाते हैं। यह विद्या विदेशों में भी है। स्वर्गीय "श्री डब्ल्यू स्टेविड" मृतक आत्माओं से बातचीत करने में सिद्धहस्त थे।

एक बार एक फोटोग्राफर ने "डॉ० थयोव वरहाजमान" का एक फोटो खींचा। जब फोटो खींच लिया गया तो डॉ० वरहाजमान ने कहा—मुझे ऐसा लगा जैसे फोटो खींचते समय कोई मेरे साथ हो, जबकि उनके साथ कोई भी दृश्य प्राणी खड़ा न हुआ था; लेकिन दूसरे दिन जब फिल्म धुलकर आई तो लोग यह देखकर दंग रह गये कि उस फोटो के साथ ही स्वर्गीय ग्लेडस्टोन का भी फोटो आ गया था।

हमारे यहाँ यह कहा जाता है कि कथा-कीर्तन, संगीत, भजन, चित्रकला, जप-तप, ध्यान-धारणा के आधार पर मन को एकाग्र करके उसे आत्म-तत्त्व की शोध में नियोजित किया जा सकता है। निग्रहीत मन की सत्ता इतनी सूक्ष्म और गतिशील हो जाती है कि उसे कहीं भी दौड़ाया जा सकता है और दूरस्थ स्थान को भी देखा और सुना जा सकता है। मन को जब आत्मा में केंद्रित कर देते हैं, तो समाधि सुख मिलता है।

दूसरे देशों में समाधि-सुख की कल्पना तो की गई है, पर उसका कारण और कर्ता आत्मा को न मानकर मन को माना जाता है। मन यद्यपि अत्यंत सूक्ष्म सत्ता है, पर वह अन्न की गैसीय स्थिति है। अन्न से रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, वीर्य आदि सप्त धातुएँ बनती हैं। वीर्य इनमें से स्थूल-तत्त्व की अंतिम अवस्था है,

वहाँ से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि अंतःकरण चतुष्टय बनते हैं, इनको ज्ञान और मोक्ष का आधार माना गया है; अर्थात् यह मन के ऊपर अवलंबित है कि वह सांसारिक पदार्थों में ही घिरा रहे अथवा सूक्ष्म-सत्ता को प्राप्त कर समाधि सुख प्राप्त करे। मन तो भी एक रासायनिक तत्त्व ही है, आत्मा नहीं।

अमेरिका के डॉक्टर टिमोदीलियरी ने मन को अंतिम स्थिति माना है और उसी के विस्तार को समाधि सुख। नशा और कुछ औषधियाँ मनश्चेतना का विस्तार कर देती हैं, जिससे अनेक गुना अधिक शक्ति अनुभव होती है, उस स्थिति में कामजन्य-सुख बहुत बढ़ जाता है। सामान्य स्थिति में भी अपने में शक्ति अनुभव होती है और बड़ा आनंद आने लगता है। वह दरअसल चेतना को निम्न स्तर से उठाकर जगत् के मूलभूत तत्त्वों के साथ एकाकार कर देने की क्षणिक स्थिति मात्र है। पर वह उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना आध्यात्मिक साधन। उससे अतिमानस तत्त्व की सत्यता अनुभव की जा सकती है।

इस दिशा में जैकी कैमन के मनो-विस्तारक प्रयोगों का बड़ा महत्त्व है। वे प्रकाश की किरणों को विविध आकृतियों में संयोजित करती हैं और पानी के माध्यम से उन आकृतियों के छाया-चित्र किसी पर्दे में प्रक्षेपित करती हैं। उन चित्रों को ध्यानपूर्वक देखने से मनुष्य सम्मोहन की स्थिति में पहुँच जाता है और उसे विचित्र प्रकार की अनुभूतियाँ होने लगती हैं। इससे भी आत्मा का अस्तित्व प्रमाणित होता है। यह अनुभूति यद्यपि क्षणिक होती है और पाश्चात्य वैज्ञानिक उसे सुख की संज्ञा दे देते हैं, पर यह वस्तुतः उस आत्मा के साथ एकाकार का क्षणिक आवेग है; समाधि सुख तो आत्मा में पूर्ण विलय के साथ ही मिलता है।

सोमरस के संबंध में भारतवर्ष में अनेक तरह की मान्यताएँ प्रचलित हैं। उसका एल्डुअस हक्सले ने बहुत गुणगान किया है।

उत्तरी योरोप में उसी तरह का एक पेय फ्लाई एगेरिक नामक कुकुरमुत्ते से तैयार किया जाता है। फिजी द्वीप-समूह के लोग काबा नामक पेय पीते हैं। एंडियन तराई (अमरीका) के लोग आयाहुस्का नामक पेय पीते हैं, इससे उन्हें दिवास्वप्न जैसी अनुभूतियाँ होने लगती हैं। कई बार इस अवस्था में भविष्य की तथा मृत आत्माओं की विचित्र और सत्य बातें फलित होती हैं। मन उस अवस्था में किसी बड़े तत्त्व के साथ एकाकार करके ही वह क्षणिक अनुभूतियाँ प्राप्त करता है। वह तत्त्व यदि है तो उसे आत्मा कहेंगे। भले ही उसका स्वरूप समझने में विज्ञान जगत् को कुछ समय लगे।

शाश्वत सुख हमारे जीवन का लक्ष्य है और आत्मा उसका केंद्र। इंद्रियाँ उसके विषय मात्र हैं। उन विषयों को लक्ष्य न बनाकर आत्मा को जानने का प्रयत्न करना चाहिए; यही बात उपनिषदकार ने कही है।

वैज्ञानिक प्रयोग—

● मृतक का सिलेंडर में फोटो लेकर आत्मा का अस्तित्व

आत्मा के अस्तित्व के बारे में प्रयोगशालाओं के कुछ उत्साह वर्धक निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं। 'विलसा क्लाउड चेंबर' के शोध निष्कर्ष अमेरिका में निकाले गये हैं, पर उनकी जानकारी संसार के अन्य देशों ने भी प्राप्त की है और इस बात से आश्वस्त होना संभव हुआ है कि मृत्यु के उपरांत भी प्राणी किसी रूप में बना रहता है। 'विलसा क्लाउड चेंबर' एक खोखला पारदर्शी सिलेंडर है, जिसके भीतर से हवा पूरी तरह निकाल दी जाती है। उसके भीतर रासायनिक घोल पोत दिये जाते हैं, जिनसे विशेष प्रकार का चमकदार हल्का-सा कुहरा गैस उसके भीतर छा जाता है। इस कुहरे की विशेषता यह होती है कि एक भी इलेक्ट्रॉन उसमें होकर

गुजरे तो फिट किये गये शक्तिशाली कैमरे उसका फोटो तुरंत उतार लेते हैं और यह पता चल जाता है कि सिलेंडर के भीतर क्या हलचल हुई।

इस सिलेंडर के एक कक्ष में जीवित चूहे और मेंढक रखे गये। परीक्षण काल में उन प्राणियों में से एक-एक का प्राण हरण बिजली का करेंट लगाकर किया गया। मरने के उपरांत क्या होता है, इसकी फिल्म उतारी गई तो प्रतीत हुआ कि भूत प्राणी की हू-ब-हू आकृति उस रासायनिक कुहरे में तैर रही है। वह निश्चेष्ट नहीं थी, वरन् वैसी ही हरकतें कर रही थी जैसी कि जीवित अवस्था में वह प्राणी किया करता है। छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों से लेकर चूहे, मेंढक जितने विकसित प्राणियों तक की मरणोपरांत हरकतों के संबंध में इस चेंबर ने इतना प्रमाण तो दे ही दिया है कि खुली आँखों से न दीख पड़ने वाली—तोले जा सकने वाले पदार्थ स्तर से अधिक हल्की कोई सत्ता विद्यमान रहती है और उसे विशेष उपायों में देखा जा सकता है। यह सत्ता क्रमशः धुँधली पड़ती जाती है और फिर कैमरे की पकड़ से भी बाहर चली जाती है। अधिक विकसित कैमरे यदि बन सके होते तो शायद उस धुँधली सत्ता के क्रिया-कलाप के संबंध में भी कुछ अधिक जानकारी मिलती।

चेकोस्लोवाकिया के वैज्ञानिक ब्रेतिस्लाव ने परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध किया कि जब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, तो उसके चारों ओर दिखाई देने वाला प्रभामंडल लुप्त हो जाता है। इसके लिए उन्होंने एक मरणासन्न स्थिति में शैया पर पड़े एक रोगी के चित्र लिये। जब वह रोगी जीवित था, तब उसके शरीर का प्रभामंडल धीरे-धीरे धुँधलाता जा रहा था। जब डॉक्टरों ने उसकी मृत्यु घोषित कर दी, तब रोगी का जो चित्र लिया गया, उसमें कहीं भी कोई प्रकाश नहीं दिखाई दिया।

डॉ० ब्रेतिस्लाव का कहना है कि यह प्रकाश बायोप्लाज्मा तत्त्व के सक्रिय रहने पर ही दिखाई देता है तथा मृत्यु के समय इसकी लपटें और चिंगारियाँ शून्य में विलीन हो जाती हैं।

● वैज्ञानिक शोध

डॉ० गेट्स ने कुछ नई किरणों की खोज की है और उनसे आत्मा के अस्तित्व का पता लगाया है। इन किरणों का रंग कुछ कालापन लिये हुए लाल है, ये कुछ-कुछ बनफशई रंग की कही जा सकती हैं, पर इस रंग से इनका रंग कुछ गहरा होता है। 'एक्स रेज' जिस रंग की होती है, यह भी उनसे कुछ-कुछ मिलती-जुलती सी हैं, किंतु कई बातों में इनका 'एक्सरेज' से बिल्कुल संबंध नहीं हैं। इनमें जो देदीप्यमान शक्ति रहती है, वह अँधेरे में नहीं दीख पड़ती उनके प्रकाश को मनुष्य आँख से नहीं देख सकता, किंतु उन्होंने कमरे की दीवारों में 'रोडाप्सिन' नामक एक पदार्थ का लेप किया तो देखा कि इन किरणों के प्रभाव से उसका रंग बदल जाता है। इन किरणों में इतनी जबर्दस्त पारदर्शिता देखी गई कि वे हड्डी, धातु, लकड़ी और पत्थर को भी पार करके चमकने लगती हैं, यदि इन किरणों को दीवार में डाला जाये और बीच में कोई मनुष्य आ जाये, तो उन्होंने देखा कि उसकी छाया स्पष्ट दिखाई देने लगती है।

तात्पर्य यह है कि यह किरणें जीवित प्राणी के शरीर का भेद नहीं कर सकती हैं। यह प्रकाश किरणें डॉक्टर गेट्स ने तुरंत मरे हुए जानवरों की आँखों से प्राप्त की हैं। उन्होंने जीवित चूहे को गिलास में डालकर इन किरणों का अध्ययन किया, पर सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक उनकी उपलब्धि यह थी कि जब एक मरणासन्न चूहे को गिलास में डालकर यह किरणें फेंकी गईं तो दीवार पर उसकी छाया पड़ी। जब तक चूहा जीवित रहा, छाया

बराबर बनी रही; पर जैसे ही चूहे के प्राण निकल गये, उसका शरीर भी इन किरणों के लिए पारदर्शी हो गया। ठीक उसी क्षण एक छाया नली के भीतर जिसमें चूहा रखा गया था निकली और मसाला लगी हुई दीवाल की तरफ जाकर कुछ दूर ऊपर लोप हो गई। परीक्षा के समय यह दृश्य दो और अध्यापक भी देखते रहे। उन्होंने इस छाया को दीवार पर ऊपर-नीचे जाते हुए अच्छी तरह देखा। गेट्स इस प्रयत्न में लगे रहे कि यह पता लगाया जाये कि जब यह छाया शरीर से निकलकर कहीं लोप हो जाती है, उस समय वह ज्ञान अवस्था में रहती है या नहीं। इस संबंध में यदि कुछ वैज्ञानिक हल निकल सका तो आत्मा के सूक्ष्म अस्तित्व की और अधिक पुष्टि की जा सकेगी। भूत-प्रेतों की लीलाएँ वास्तव में इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं, इसका विवरण आगे देंगे।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि चूहा जीवित अवस्था में पारदर्शी क्यों नहीं होता ? मृत्यु के उपरांत ही क्यों होता है ? डॉ० गेट्स ने इसका उत्तर देने के लिए गैलवानो मीटर (विद्युत्मापक यंत्र) से किसी व्यक्ति के शरीर में संचालित विद्युत् तरंगों की शक्ति को मापा और इसके बाद उन किरणों की शक्ति को। शारीरिक बिजली की शक्ति अधिक थी। अब गेट्स ने बताया कि जिस समय मनुष्य विचार करता है और उसकी नाड़ी और मज्जा-तंतु काम करते रहते हैं, तब तक शरीर में विद्युत् प्रवाह बना रहता है। इस प्रवाह की शक्ति अधिक होने के कारण जब यह किरणें उनके पास पहुँचती हैं तो पीछे धकेल दी जाती हैं, पर जब प्राण-विद्युत् निकल जाती है तो उनके लिए कोई बाधा नहीं रह जाती। उन्होंने शरीर की इस विद्युत्-शक्ति को ही आत्मा की प्रकाश-शक्ति माना है। इस तथ्य से भी बिल्कुल इनकार नहीं किया जा सकता।

आत्मा को तौलने और उसे विकिरण से सिद्ध करने की तरह ही उसके फोटो लेने के लिए भी प्रयत्न किये गये हैं। फ्रांस के

डॉक्टर हेनरी बारादुक ने एक विशेष कैमरा बनवाया और मृत्यु की फोटो लेने की तैयारी की। संयोग से एक बार उनका लड़का बहुत तेजी से ज्वराक्रांत हुआ। उसके बचने के कोई लक्षण दिखाई न दिये तो इस वैज्ञानिक ने परीक्षण करने की ही बात ठान ली। ऐसा ही प्रयोग उसने अपनी मरणासन्न पत्नी पर भी किया और एक प्रकार की प्रकाश-किरणों की पुष्टि की, पर उसके कठोर स्वभाव के कारण फ्रांसीसियों ने उसकी उपेक्षा कर दी और उसका सारा उत्साह वहीं ठंडा पड़ गया। कैलीफोर्नियो के दूसरे डॉ० एफ० एम० स्ट्रॉ ने तो इस प्रकार का एक सार्वजनिक प्रदर्शन ही किया था, जिसमें अखबार के प्रतिनिधियों ने साधारण कैमरों से कुछ रहस्यमय किरणों के चित्र प्राप्त किये। सब वैज्ञानिकों ने यह माना कि मनुष्य शरीर में कोई चैतन्य तत्त्व, कुछ रहस्यमय किरणें, कोई विलक्षण तत्त्व और प्रकाश है अवश्य, पर उसका रहस्य वे नहीं जान पाये।

● मृत्यु-आत्मा का बहिर्गमन

वैज्ञानिक परीक्षण

इंग्लैंड की राजधानी लंदन के प्रख्यात सेंट जेम्स अस्पताल के डॉक्टर डब्ल्यू० जे० किल्नर को एक बार आत्मा के अस्तित्व को जानने की तीव्र जिज्ञासा पैदा हुई। यह जिज्ञासा एक आकस्मिक घटना के कारण हुई। एक दिन जब वे अस्पताल में रोगियों का परीक्षण कर रहे थे, तो खुर्दबीन पर एक विशेष प्रकार का रंग जम गया। वह विशेष रासायनिक रंग था, जो इतना दुर्लभ था कि सेंट जेम्स तो दूर, शायद इंग्लैंड की किसी भी प्रयोगशाला में उसका उपलब्ध होना कठिन था। वह रंग कहाँ से आया, इस पर बहुत खोज की, पर उस संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका।

दूसरे दिन वे अपने एक रोगी के कपड़े उतरवाकर खुर्दबीन से उसके शरीर की जाँच कर रहे थे तो वह यह देखकर स्तब्ध रह गए कि उसी रासायनिक रंग की लहरें शीशे के सामने उड़ रही हैं। कपड़े बिल्कुल हटा देने पर उन्होंने पाया कि रोगी के छह-सात इंच की परिधि में वही प्रकाश एक मंडल बनाये हुए स्थित है। यह देखकर वे इतना डर गये कि उनकी उँगलियाँ काँपने लगीं। उन्होंने बहुत जाँच की, पर उस प्रकाश को शरीर की किसी अवस्था का परिणाम नहीं पाया। तभी एक और विचित्र घटना हुई। उन्होंने देखा जब यह प्रकाश कुछ तीव्र रहा, तब तक रोगी चेतना की-सी स्थिति में रहा; पर जैसे ही प्रकाश मंद पड़ना प्रारंभ हुआ कि रोगी का शरीर भी शिथिल पड़ने लगा। डॉ० किल्नर बराबर रोगी पर दृष्टि रख रहे थे। वह मरणासन्न था, धीरे-धीरे वह प्रकाश न जाने कहाँ विलुप्त हो गया और इसके बाद जब उन्होंने उसकी नाड़ी परीक्षा की तो उसे पूर्ण रूप से मृत पाया। सारा शरीर ठंडा पड़ चुका था और वहाँ किसी भी प्रकार का रासायनिक रंग शेष नहीं रह गया था।

इस घटना की रिपोर्ट छपी तो सैकड़ों लोग आश्चर्यचकित रह गये। डॉ० किल्नर ने बाद में 'दि ह्यूमन एटमास्फियर' नामक पुस्तक लिखी। उसमें उन्होंने वर्तमान भौतिक विज्ञान को चुनौती देने वाले तथ्य प्रस्तुत किये हैं और यह बताया है कि पश्चिम की यह बड़ी भारी भूल है कि वह जीवन जैसी अमूल्य और वास्तविक वस्तु की खोज करने की अपेक्षा जड़ वस्तुओं के चक्कर में पड़ा अपना अहित कर रहा है। अमेरिका के विलियम मैक्डूगल का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने भी आत्मा के अस्तित्व को जानने के लिए प्रयोग प्रारंभ कर दिये। उन्होंने रोगियों का वजन लेने के लिए एक ऐसा तराजू बनाया, जो पलंग पर लेटे हुए रोगी का एक ग्राम से भी सैकड़ों अंश कम भार को भी तौल

सके। एक बार एक मरणासन्न रोगी को उसमें लिटाकर वजन लिया। उसके फेफड़ों में कितनी साँस रहती है, उसका तौल पहले ले लिया गया। कपड़ों सहित पलंग का वजन भी तैयार था। रोगी को जो भी औषधि दी गई, उसका तौल तराजू की सुई बराबर बताती रहती थी।

जब तक रोगी जीवित रहा तब तक वह सुई बराबर एक स्थान पर टिकी रही, पर जिस क्षण उसके प्राण निकले, सुई पीछे हटकर टिक गयी और जब अंक पढ़े गये तो यह देखा गया कि १ औंस (आधी छटाँक) वजन कम हो गया है। बाद में भी उन्होंने जितने भी मरणासन्न रोगियों पर यह प्रयोग किया, चौथाई औंस से लेकर डेढ़ औंस तक वजन कम पाया। उन्होंने इस सिद्धांत की पुष्टि की कि शरीर में कोई अत्यंत सूक्ष्मतत्त्व निश्चित रूप से है। वही जीवन का आधार है। उसकी तौल भी उन्होंने उपरोक्त प्रकार के परीक्षणों से प्राप्त की। लॉस एंजिल्स के प्रोफेसर ट्वाहनिंग और कार्नल विश्वविद्यालय के डॉ० ओटो रान ने भी ऐसे प्रयोग किये। १९४६ में डॉ० रान ने अपने प्रयोगों के आधार पर लिखा कि इसमें संदेह नहीं है कि प्रत्येक जीवित मनुष्य के चारों ओर कुछ रहस्यमय किरणों का आवरण रहता है, पर वे मृत्यु के उपरांत लुप्त हो जाती हैं। विज्ञान जब तक इन अतिसूक्ष्म प्रकाशकणों को नहीं जान पाता, तब तक वह अधूरा और भ्रामक ही रहेगा, क्योंकि जीवन का आधार इन सूक्ष्म किरणों में सन्निहित है और उसके विकास एवं अनुभूति की प्रणाली भिन्न है।

आदमी मर गया या अभी जीवित है, इसकी घोषित मान्यता यह है कि मस्तिष्क काम करना बंद कर दे। इलेक्ट्रॉन से फेलोग्राम (ई० ई० जी०) मस्तिष्कीय कंपनों की हरकत अंकित करने से इनकार कर दे तो समझना चाहिए कि आदमी मर गया। ऐसे व्यक्ति को मृतक घोषित करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

चिकित्सा जगत् की पूर्व मान्यता यही है। फ्रांस की नेशनल मेडिकल ऐकेडेमी के एक मृत्यु के फैसले को कानूनी मान्यता दिलाने के लिए विधिवत् यह घोषणा करनी पड़ी थी कि यदि किसी व्यक्ति का ई० ई० जी० ४८ घंटे तक लगातार निष्क्रियता प्रकट करता रहे तो उसकी 'कानूनी मृत्यु' घोषित की जा सकती है।

मृत्यु की परिभाषा करते हुए मस्तिष्क विशेषज्ञ डॉ० हैनीवल हैयलिन ने भी यही कहा था—मस्तिष्क की मृत्यु को अंतिम मृत्यु कहा जा सकता है। हार्वड मेडीकल कॉलेज के डॉ० राबर्ट एस० श्वास ने भी यही मत निर्धारित किया था कि यदि मस्तिष्क जबाव दे गया है तो हृदय को पंप करके जीवित रखने का प्रयत्न करना बेकार है।

इस पूर्व मान्यता को झुठलाने वाली एक घटना अंकारा यूनिवर्सिटी के डॉक्टर ने स्वयं ही प्रस्तुत कर दी। डॉ० रील ३० वर्ष के नवयुवक थे। वे एक मरीज का एक्स-रे ले रहे थे कि गलती से बिजली का नंगा तार छू गये। जोर का आघात लगा और उनके दिमाग ने काम करना बंद कर दिया। ई० ई० जी० के हरकत न करने के आधार पर उन्हें मृतक घोषित कर दिया जाना चाहिए था, पर वैसा किया नहीं जा सका, क्योंकि उस हालत में भी उनके चेहरे पर और उँगलियों में हरकत पाई गई। उनकी आँखें खुली हुई थीं और कभी-कभी पलक झपकते देखे गये। डॉक्टरों ने उनके मुँह में नली डालकर पेट में वेबीफूड, फलों का रस, साँस आदि पहुँचाया फलतः उनका दिल तथा दूसरे अंग काम करते रहे।

इस विलक्षण जीवित मृतक को देखने के लिए अमेरिका, जापान, रूस, इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के डॉक्टर हवाई जहाजों से अंकारा पहुँचे और यह देखकर चकित रह गये कि मस्तिष्क के पूर्णतया निष्क्रिय हो जाने पर भी डॉ० रील पौधे की तरह जी रहे थे

और उन्हें मांस का पौधा कहा जाने लगा। यों रोगी को जीवित तो न किया जा सका, पर आशा से बहुत अधिक दिनों तक वे जिये।

इससे इस नये सिद्धांत की पुष्टि हुई कि मस्तिष्क का वह भाग जो ई० ई० जी० की पकड़ में आता है, उससे भी भीतर एवं उससे भी गहरी कोई और सत्ता है, जो जीवन के लिए मूल रूप से उत्तरदायी है। मस्तिष्क तो उस चेतना का एक औजार मात्र है।

जापान की कोवे यूनिवर्सिटी के प्रो० स्यूडा, डॉ० के० किटो और डॉ० सी० आदाशी के त्रिगुट ने मृत दिमाग को जीवित और जीवित को मृतक बनाने में एक नई सफलता प्राप्त की है। उन्होंने बिल्ली का दिमाग निकालकर शून्य से २० डिग्री नीचे शीत वातावरण में जमा कर रखा और २०३ दिन बाद उसे धीरे-धीरे तापमान देकर पुनः सक्रिय किया। भय था कि ऑक्सीजन के अभाव में मस्तिष्क की कोशिकाएँ मर गई होंगी और दिमाग निकम्मा हो गया होगा, पर वैसा हुआ नहीं। २०३ दिन तक भी दिमाग जीवित रहा और उसे फिर सक्रिय बनाकर दूसरी बिल्ली के मस्तिष्क में फिट किया जा सका।

पिछले दिनों वैज्ञानिक क्षेत्रों में आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व को अमान्य ठहराया जाता रहा है और कहा जाता रहा है कि मस्तिष्क ही आत्मा है और उसकी गतिविधियाँ समाप्त होते ही आत्मा का अंत हो जाता है। नास्तिकवादी मान्यताएँ मनुष्य को चलता-फिरता, पेड़-पौधा भर बताती रही हैं और कहती रही हैं कि शरीर के साथ ही जीवन का सदा के लिए अंत हो जाता है। पर विज्ञान की नवीनतम शोधों ने सिद्ध किया है कि मस्तिष्क चेतना के प्रकटीकरण का एक उपकरण मात्र है। मूल चेतना उससे भिन्न है और मस्तिष्कीय गतिविधियाँ समाप्त हो जाने पर भी वह अपना काम करती रह सकती है। यह आस्तिकवादी सिद्धांत का प्रकारांतर से समर्थन ही माना जायेगा।

❐ ❐

आत्मा का अस्तित्व अमान्य न किया जाये

★ ★

● आत्मा को झुठलाएँ नहीं

जड़ जगत् को ही सब कुछ मान लेना और चेतना को भी जड़ के पीछे काम करने वाली हलचलों की प्रतिक्रिया समझ बैठना जड़वाद का अंध समर्थन मात्र है। चेतना के अस्तित्व को झुठलाया जाना, अपने युग का बौद्धिक दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। जिस चेतना ने जड़ पदार्थों को साज-सँभालकर उपयोगी एवं सुंदर बनाया—जिस चेतना ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि से प्रकृति के अनेकानेक रहस्यों को जाना और उनसे लाभान्वित हो सकने की स्थिति तक मनुष्य को पहुँचाया, उसी चेतना के अस्तित्व तक से हम इनकार करने लगे तो इसे आत्म विस्मृति के अतिरिक्त और क्या कहा जायेगा ?

कठिनाई यह है कि विज्ञान जगत् प्रत्यक्ष भौतिक प्रयोग-परीक्षणों को ही सब कुछ मान बैठता है, और प्रयोगशालाओं की सिद्धि को ही प्रामाणिक ठहराता है। जबकि तर्क और तथ्य यह भी कहते हैं कि इस विश्व के रहस्यों को—विशेषतया चेतन तथ्यों को जानने के लिए प्रयोगशालाओं की उपलब्धियों तक ही सीमित नहीं रहा जा सकता।

पदार्थों में पाई जाने वाली हलचल स्वसंचालित हो सकती है, यह प्रतिपादन गले नहीं उतरता। चेतन संचालक के बिना वस्तुएँ निश्चेष्ट और अस्त-व्यस्त पड़ी रहती हैं। बहुमूल्य जलयान, वायुयान, रेल इंजन आदि बिना ड्राइवर के नहीं चलते। फिर असीम ब्रह्मांडव्यापी, अंतर्ग्रही और सीमित परमाणु सत्ता में जो सुव्यवस्थित अनवरत गति चक्र रहा है, वह अनायास स्वसंचालित कैसे हो सकता है ? इसके पीछे चेतन शक्ति की प्रेरणा एवं व्यवस्था होनी

आवश्यक है। यदि विवेक, तर्क एवं बुद्धि को भी यांत्रिक उपकरणों की तरह ही साक्षी-साधन मान लिया जाये तो फिर ईश्वर के अस्तित्व को समझने-स्वीकार करने में कोई कठिनाई न रहेगी।

आत्मा के अस्तित्व को प्रयोगशालाओं में तो सिद्ध नहीं किया जा सका, पर अन्य ऐसे अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि मरने के बाद भी जीव चेतना का अस्तित्व बना रहता है। इस तथ्य की साक्षी में प्रेतात्माओं की हलचलें तथा पुनर्जन्म की ऐसी घटनाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं, जो प्रामाणिक व्यक्तियों के अनुभव में आई हैं और उन्हें झुठलाया नहीं जा सकता। इसी प्रकार पुनर्जन्म के भी अगणित प्रमाण मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि पिछले जन्म की ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण नये जन्म में स्मरण बना रह सकता है, जो अन्य लोगों को विदित नहीं था। किसी ने सिखा-पढ़ाकर पूर्व जन्म विवरण का कौतूहल तो खड़ा नहीं कर दिया है ! इस आशंका की काट उन प्रमाणों से हो जाती है जिनमें बालकों ने अपने पूर्वजन्म के संबंधियों को पहचाना और नाम लेकर पुकारा है। इसी प्रकार उनने नितांत व्यक्तिगत ऐसी घटनाएँ सुनाई हैं, जो संबद्ध व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को विदित नहीं हो सकती थीं। जमीन में अपना गढ़ा हुआ धन बताकर उसे निकलवाना पूर्वस्मृति का ठोस प्रमाण समझा जा सकता है। प्रेतात्माओं के अस्तित्व और पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष प्रमाणों को भी यदि प्रयोगशाला के सिद्ध तथ्यों की तुलना में माना जा सके तो फिर आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व में संदेह की कोई गुंजायश नहीं रह जाती।

गणितशास्त्री ओस्पेंस्की ने तीन ग्रंथों में गणित के आधार पर चेतना के व्यापक अस्तित्व को सिद्ध करने का अकाट्य प्रयत्न किया है। इस संदर्भ में उनके द्वारा लिखे गये ग्रंथों में 'इन सर्च

ऑफ दि मिरेकुलस'—'टर्टियम आर्गेनम थ्योरी ऑफ इंटरनल लाइफ'-अधिक प्रसिद्ध हैं।

भौतिकी के आचार्य राबर्ट मायर ने ऊर्जा के दर्शन पर जो खोजें की हैं, वे बताती हैं कि उसकी अधिकाधिक सूक्ष्म स्थिति में जो तत्त्व शेष रह जाता है, उसे चेतना की संज्ञा दी जा सकती है। यह उच्चस्तर पर एकरस और सर्वव्यापी स्थिति में बनी रहती है। उसका उत्पादन और विलयन क्रम तो स्थूल रूप से ही चलता है।

मनोविज्ञानी जे० बी० राइन ने मानवी मन चेतना को पराजागतिक और पराभौतिक की संज्ञा दी है। वे उसका स्वरूप विद्युतीय एवं चुंबकीय स्तर की ऐसी स्वतंत्र इकाई के रूप में मानते हैं, जो मरने के बाद भी अपनी सत्ता बनाये रहती है। उसमें इतने प्रबल संकल्प भी जुड़े रहते हैं, जिनके सहारे पुराने स्तर की तथा नये प्रकार की किसी आकृति का सृजन और धारण कर सके। उनकी दृष्टि में यह व्यक्ति चेतना दृश्य अथवा अदृश्य स्थिति में अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रहने में पूर्णतया समर्थ है।

आइंस्टाइन ने सृष्टि के मूल में चेतना को सक्रिय माना था। जे० ए० थामसन, जेम्स जोन्स, ए० एस० एडिंगटन आदि ने विज्ञान की नवीन दिशाओं का अलग-अलग विवेचन करते हुए एक ही बात कही—विज्ञान के पास जीवन के प्रारंभ होने की कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं है। वैज्ञानिक अन्वेषण अब चेतना और विचार जगत् की ओर बढ़ रहे हैं।

भारतीय दर्शन और संस्कृति आदिकाल से आत्मा की अखंडता पर आस्थावान् हैं। अणु मात्र होकर भी वह संपूर्ण शरीर पर आधिपत्य रखता है। भावनात्मक परिष्कार से आत्मबल बढ़ता है और अपने स्वरूप को जानने वाला जीवात्मा परमात्म-सत्ता से एक रूप हो जाता है।

नोबुल पुरस्कार विजेता भौतिकीविद् श्री पियरे दि कोम्ते ने आत्मा को विश्वात्मा से संबंधित बताया है तथा इसी आधार पर उसे अमर भी कहा है, क्योंकि विश्व चेतना अमर है और आत्मा उसी की छोटी इकाई मात्र है।

इलेक्ट्रोडायनेमिक सिद्धांतों के अनुसार 'ईगो' की छानबीन किये जाने पर ये तथ्य सामने आये हैं कि जन्म-मरण चक्र में भ्रमण करती हुई, भिन्न-भिन्न आकृति-प्रकृति अपनाते हुए भी, मूल-सत्ता अक्षुण्ण रहती है।

विभिन्न खोजों के बाद विश्वविख्यात वैज्ञानिक फ्रेड हायल तथा जयंत विष्णु नार्लीकर ने यह स्थापना की है कि विश्व रचना में कारणभूत अणु और मानवीय शरीर की संरचना में कारणभूत जीवाणु की मूल संरचना एक-सी है।

केनोपनिषद् में एक कथानक आता है, उसमें जीवात्मा की सर्व-शक्तिमत्ता और सर्वोपरिता पर बहुत महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। एक बार समस्त देवताओं को अहंकार हो गया कि वे ही सर्वसमर्थ हैं और सृष्टि को चलाते हैं। देवता, अर्थात् इंद्रियाँ, इंद्रियाँ भी मनुष्य को बहका देती हैं, वे ही सर्वसमर्थ और मानवीय इष्ट हैं किंतु यह भ्रम देर तक टिकता नहीं।

इंद्र, अग्नि, वायु, आकाश आदि सभी देवताओं का ब्रह्म ने आवाहन किया। उनके सामने एक तिनका रखा और कहा—इसे उठाओ, जलाओ और उड़ाओ; पर एक नन्हें से तिनके को हस्तांतरित करने में कोई भी समर्थ न हुआ। तब ब्रह्म ने उस तिनके को उठाया, फूँक मारकर उड़ाया और जलाकर भी दिखा दिया। पराभूत देवताओं को उपदेश देते हुए केनोपनिषद् में ब्रह्म ने समझाया कि शक्ति का केंद्र शरीर नहीं, आत्म-चेतना है। शरीर तो जड़ है, उसका अभिमान नहीं करना चाहिए।

इस आख्यायिका में बताया है कि मनुष्य के शरीर में विभिन्न पदार्थों की सम्मिलित शक्ति होने पर भी यदि चेतना नहीं है तो मात्र पिंड कुछ नहीं कर सकता—सर्व शक्तिमान् चेतना है—आत्मा है जड़ शरीर नहीं, यह चेतना शरीर से स्वतंत्र अस्तित्व है।

ऋग्वेद का कथन है—

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सधीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः।।

—ऋग्वेद १०।१७७।३

अर्थात्—यह जीवात्मा अनेक मार्गों द्वारा शरीर में आता है—(शरीर से पैदा नहीं होता) शरीर से पृथक् होता है; अविनाशी और इंद्रियों का रक्षक होता है। वह शरीर के साथ भी रहता है और शरीर को छोड़कर भी रहता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक अभी कोई ऐसा प्रयोग नहीं कर पाये, जिससे आत्म-चेतना के अस्तित्व की पृथक् अनुभूति की जा सके। पर योग साधनाओं द्वारा आत्मा को बोधगम्य बनाने वाले भारतीय योगियों ने ऐसे प्रमाण प्रत्यक्ष प्रदर्शनों द्वारा प्रस्तुत किये हैं, जिनसे पता चलता है कि आत्मा अज्ञानवश शरीर के व्यापार में आसक्त पड़ा रहे—यह अलग बात है, पर वह है स्वशासी, अपने नियंत्रण में आप। एक बार सुप्रसिद्ध योगी देशबंधु की इस मान्यता को कुछ डॉक्टरों ने अमान्य किया। फलस्वरूप बंबई मेडिकल यूनियन की ओर से श्री देशबंधु का प्रदर्शन कराया गया। उसे देखने के लिए बंबई मेडिकल कॉलेज में छात्र स्टाफ तथा अन्य विशिष्ट नागरिक भी एकत्र हुए। डॉ० बसंत जी रैले उनके शरीर परीक्षण के लिए नियुक्त किये गये। श्री देशबंधु से कहा गया यदि आप मानते हैं कि चेतना को शरीर से भिन्न किया जा सकता है तो आप दाहिने हाथ की नाड़ी-क्रिया को शून्य करके दिखाइये ?

श्री देशबंधु ने लंबी श्वास-प्रश्वास क्रिया की। गहरी साँस ली और उसे बाहर निकाल दिया। दाहिना और बायाँ दोनों हाथ बाहर निकाल दिया। श्री रैले ने देखा, बायें हाथ की नाड़ी यथावत् धक्-धक् कर रही थी, पर दाहिने हाथ की नाड़ी में संचालन की जरा भी गति नहीं थी। दुबारा फिर वैसा ही करके उन्होंने दाहिने हाथ की नाड़ी चलाकर दिखा दी और बायें हाथ की नाड़ी गति को शून्य कर दिया। डॉक्टरों की टीम आश्चर्यचकित तब रह गई जबकि योगी देशबंधु ने विभिन्न प्राणायाम क्रियाओं द्वारा सारे शरीर की नाड़ी संस्थानों को तो गतिशील रखा, किंतु हृदय की गति को बिल्कुल रोक दिया। हृदय गति रुक जाने पर मनुष्य एक भी क्षण जीवित नहीं रह सकता। पश्चिम अभी तक कोई ऐसा प्रयोग नहीं कर सका कि गति शून्य हृदय को गति देकर मृतक को जिंदा कर दिया हो, जबकि प्रत्यक्ष उदाहरण यह था कि शेष शरीर जी रहा था और शरीर का इंजिन हृदय फेल पड़ा था। श्री देशबंधु ने कहा—आत्मा स्वतंत्र द्रव्य है, उस पर केंद्रस्थ होकर आश्चर्यजनक दिखने वाला हर काम संभव है।

डॉक्टरों ने उस समय यह तर्क किया कि संभव है, यह सब आपने हिप्नोटिज्म द्वारा लोगों को सम्मोहित करके दिखाया हो। इस पर उन्होंने दुबारा प्रयोग किया। इस बार एक्स-रे कार्डियोग्राम द्वारा विधिवत् हृदय गति की जाँच की तो भी परिणाम ज्यों का त्यों रहा। श्री देशबंधु ने इसे महज खेल बताते हुए कहा—आत्म-चेतना नाड़ी संस्थानों द्वारा इस शरीर से संबद्ध है। यह क्रियाएँ और कुछ नहीं, मात्र 'वेगस नर्व' के नियंत्रण का परिणाम है। भली भाँति नियंत्रित आत्म-चेतना से दूरगमन, परलोक अनुभूति, परकाया प्रवेश, ईशत्व, वशित्व आदि विलक्षण सिद्धियाँ और सामर्थ्य अर्जित की जा सकती हैं। अणु से विराट् बनने का श्रेय इन साधनाओं द्वारा ही समुपलब्ध होता है।

योग मार्ग न सही, ऐसे अनुभव पाश्चात्य लोगों ने भी किये हैं और माना है कि शरीर की मुख्य चेतना अपने स्वतंत्र अस्तित्व में वस्तुतः रह सकती है। द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान अगस्त सन् १९४४ को एक फौजी अफसर को ऐसा ही अनुभव हुआ। वह अफसर स्काउट कार द्वारा जा रहा था, तभी जर्मनी की एंटी टैंक तोपों का सीधा प्रहार हुआ। अफसर जिस गाड़ी में था, उसमें भी विस्फोटक पदार्थ भरे थे, उनमें विस्फोट हो गया। उस समय की स्थिति का वर्णन करते हुए अफसर ने द्वितीय विश्व युद्ध के मित्र राष्ट्र गजेटियर में लिखा है—जैसे ही विस्फोट हुआ, मैं २० फुट दूर जा गिरा। ऐसा लगा कि मैं दो भागों में विभक्त हो गया। मेरा एक शरीर नीचे जमीन में पड़ा तड़प रहा है। उसके कपड़ों में आग लगी है। भय से वह अपने हाथ-पैर बुरी तरह हिला रहा है; किंतु दूसरा शरीर इस शरीर के ऊपर आकाश में हवा की तरह तैर रहा था। मैं अपने रूप को स्वयं पहचानने में असमर्थ था, पर वहाँ की हर वस्तु, सड़क के पार का युद्ध दृश्य— झाड़ियाँ, जलती कार मैं सब कुछ देख रहा था। मुझे भीतर से एक अंतःप्रेरणा उठी कि तड़फड़ाने से कुछ लाभ नहीं, जल्दी-जल्दी शरीर को जमीन से रगड़ो ताकि आग बुझ जाये। शरीर ने ऐसा ही किया। वह लुढ़क कर बगल की खाई में जा गिरा। खाई में कुछ नमी थी, आग बुझ गई और मुझे ऐसा लगा जैसे एक पक्षी द्वारा घोंसले में प्रवेश की तरह मैं फिर उसी शरीर में आ गया। अब मुझे शरीर की पीड़ा का पुनः भान होने लगा, जबकि थोड़ी देर पूर्व यही दृश्य मैं मात्र दर्शक बना देख रहा था।

यह उदाहरण विवेक चूड़ामणि की इस सत्यता का ही बोध कराते हैं—

असंगोऽहमनंगोऽ हमलिंगोऽहमभंगुरः।
प्रशांतोऽहमंतोऽहमतांतोऽहं चिरंतनः।।

—(४९०)

मैं (आत्म-चेतना) असंग हूँ, अशरीर हूँ। मेरा कोई लिंग भेद नहीं, मेरा नाश नहीं होता; मैं अत्यंत शांत, अनंत, अतांत (निरीह) और पुरातन हूँ। मेरा कोई आदि अंत नहीं।

भारतीय दर्शन के इन गूढ़ रहस्यों का मर्म श्री रामकृष्ण परमहंस बहुत सीधे सादे उदाहरण से समझाया करते थे। वे कहा करते थे—जिस तरह प्याज की गाँठ का छिलका उतार दो तो दूसरा छिलका आ जाता है। छिलके उतारते जाओ, अंत में उसका बीज मात्र रह जाता है। उसी प्रकार शरीर के पदार्थ की समीक्षा, उसका विश्लेषण करते जाओ तो समस्त स्थूल पदार्थों के बाद जो शेष बचेगा, वह आत्म-चेतना ही होगी।

इसकी विधिवत् अनुभूति लंबी योग-साधनाओं से संभव है, पर कई बार आकस्मिक घटना भी आत्म-चेतना के पृथक् अस्तित्व का बोध करा देती है। जम्मू में शिक्षा विभाग के एक मध्यम श्रेणी कर्मचारी श्री गोपीकृष्ण ने किसी पुस्तक में पढ़ा—मस्तिष्क के मध्य ज्योतिर्लिंग का ध्यान करने से परमात्मा की अनुभूति होती है। एक दिन वे इसी तरह ध्यान कर रहे थे। जिज्ञासा की प्रखरता में बड़ी प्रबल शक्ति है। मन की चंचलता के कारण ध्यान का जो लाभ कुछ लोग वर्षों अभ्यास के बाद भी नहीं ले पाते, वह उनकी तीव्र जिज्ञासा ने क्षण भर में प्रदान कर दिया। उन्हें सहस्रार की स्पष्ट अनुभूति अकस्मात् हो गई। वे समझ न सके कि यह क्या हुआ। वे दिव्य लोक में खोये से रहने लगे। एक दिन वे तवी पुल पार कर रहे थे, तभी उस प्रकाश के बोध के साथ ही उनके मस्तिष्क में बहुत ही दिव्य भाव छंद-बद्ध काव्य के रूप में उदित हुए। साधारण शिक्षित व्यक्ति में असाधारण कवित्व शक्ति का उदय उनके लिए एक आश्चर्य बन गया। वे कविताएँ लिखने लगे। आश्चर्य तब और भी गहरा हो गया जब उनके मस्तिष्क में जर्मन, फ्रेंच, इटैलियन, अरबी जिनका कि उन्हें ज्ञान भी नहीं था कि नियमित काव्य धाराएँ

उतरने लगीं। उनके इन काव्यों और विलक्षण मानसिक शक्तियों का परीक्षण अनेक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने भी किया और उन विचारों को शृंखलाबद्ध, नियमित और व्याकरण के नियमों से नियंत्रित पाया। रहस्य को न समझने पर भी सबने माना कि श्री गोपीकृष्ण के शरीर में किसी ऐसी सत्ता का विकास हो गया है, जो शरीर और मन की पहुँच से बहुत व्यापक पहुँच वाली है। यह विलक्षण घटनाएँ देखकर योग वासिष्ठ का यह कथन याद आता है—

आत्मा शरीर संबंधी शरीरमपि नात्मनि मिथो
विलक्षणावेतो प्रकाशतमसी यथा।
देहेनास्य न संबंधो मनागेवामलात्मनः।
हेम्नः पंकलवेनेव तद्गतस्यापि मानवः।।

—५।५।२५

अर्थात् आत्मा का शरीर से कोई संबंध नहीं। अंधकार और प्रकाश की तरह दोनों दो विलक्षण पदार्थ हैं। सोना कीचड़ में गिर जाने से उस पर कीचड़ का आवरण चढ़ गया जान पड़ता है, तथापि सोने के कणों की शुद्धता में कोई अंतर नहीं आता। उसी प्रकार शरीर में आ जाने पर भी आत्मा के अस्तित्व में किसी प्रकार का अंतर नहीं आता।

आधुनिक वैज्ञानिक चेतना को प्राकृतिक मानते हैं। उनका कहना है कि नमक को इतना पीसा जाये कि फिर उसके टुकड़े न हो सके, उसे नमक का परमाणु कहते हैं। शरीर जिस पदार्थ से बना है, उसकी लघुतम इकाई का नाम "सेल" है। सेल का कोश जिन तत्त्वों से बनता है, उसे प्रोटोप्लाज्मा कहते हैं। नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्बन, फास्फोरस आदि बारह पदार्थों से बना एक तरल पदार्थ होता है, जिसे साइटोप्लाज्मा कहते हैं। यह भौतिक पदार्थ भी इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन, न्यूट्रॉन, पॉजिट्रॉन और नाभिक से बने

हैं। हक्सले के हवाले से वैज्ञानिक कहते हैं कि इलेक्ट्रॉन निरंतर गतिशील रहते हैं। प्रकृति के बदलते रहने से इलेक्ट्रॉनों की धारा निरंतर बहती रहती है। उसी से निरंतर चेतना का क्रम बना रहता है एवं उसे ही चेतना या जीवन कहते हैं।

किंतु, प्रसिद्ध वैज्ञानिक ओलिवर लॉज ने अपनी पुस्तक विज्ञान और धर्म (साइंस एंड रिलीजन) के पेज १८ में स्पष्ट किया है कि प्रत्येक परमाणु कई इलेक्ट्रॉन से मिलकर बना होता है। यह इलेक्ट्रॉन गति भी करते हैं, पर वे एक-दूसरे से चिपके नहीं रहते; वरन् जिस तरह आकाश में ग्रह-नक्षत्र दूर-दूर परिभ्रमण करते हैं, उसी तरह यह भी अलग-अलग रहकर परिभ्रमण करते हैं। इससे इलेक्ट्रॉन्स की निरंतर प्रवाह-प्रक्रिया को चेतना या जीवन नहीं कहा जा सकता। किसी निश्चित निष्कर्ष पर न पहुँच पाने पर भी आज के विज्ञान ने यह मान लिया है कि चेतना अजर-अमर तत्त्व है। इलेक्ट्रॉन तो मन जैसी प्रचंड वेग वाली पदार्थजन्य शक्ति का नाम है। आत्मा उससे भी भिन्न है।

"दि सूट्स ऑफ कोइन्सिडेन्स" के लेखक आर्थर डॉ० कोएस्लर ने जीवसत्ता को आणविक या रासायनिक संघात से सर्वथा भिन्न माना है।

"यू डू टेक इट विद यू" के लेखक डिविट मिलर ने मस्तिष्कीय कोशों में ही घुली हुई एक अतिरिक्त चेतना को माना है तथा उसका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार किया है। यह चेतना मस्तिष्क के कोशों को प्रभावित करती है।

हमारा विश्व एक विराट् शक्ति-सागर है। यह शक्ति-सागर जड़-चेतन से मिश्रित है। प्राणियों की सत्ता इसमें एक बुलबुले की तरह स्वतंत्र अस्तित्व बनाती है, विकसित होती है और समयानुसार विलीन हो जाती है।

मूर्धन्य वैज्ञानिकों की मान्यता है कि इस विराट् शक्ति-सागर में एक भौतिक शक्तिधारा है, दूसरी प्राणिज। दोनों एक अविच्छिन्न युग्म बनाती हैं।

विकासमान विज्ञान अब जीवन को रासायनिक संयोग मात्र नहीं मानता। मनश्चेतना की मरणोत्तर सत्ता तो स्वीकार ही कर ली गई है। अब चेतना जगत् की स्वतंत्र सत्ता को एक घटक मानने की बारी है।

इन दिनों ब्रह्मांडीय चेतना की वैज्ञानिक क्षेत्रों में बहुत चर्चा है। उसे परा प्रकृति की स्वीकृति माना जाना चाहिए। प्रकृति के दो स्तर हैं—एक 'परा', दूसरा 'अपरा'। 'अपरा' वह है जिसे पंच भौतिक कह सकते हैं, इंद्रिय चेतना से जो अनुभव की जा सकती है अथवा यंत्र उपकरणों की सहायता से जो प्रत्यक्ष हो सकती है। भौतिक विज्ञान का कार्यक्षेत्र यहीं तक सीमित है। कुछ समय पूर्व तक वैज्ञानिक इतनी उपलब्धि से संतुष्ट थे। चेतना को वे आणविक एवं कंपनपरक हलचलों की ही प्रतिक्रिया कहते थे। अब बात आगे बढ़ गई। विज्ञान के बचपन ने किशोरावस्था में प्रवेश किया है। फलतः परा प्रकृति का अस्तित्व सहमते-झिझकते स्वीकार किया गया है। इस नये कार्य क्षेत्र को सूक्ष्म जगत् कहा जाने लगा है। इसकी हलचलें आणविक गतिविधियाँ नहीं कही जा सकतीं और न ताप, प्रकाश अथवा शब्द के कंपनों से उसकी कोई तुलना है। उसे समष्टि मस्तिष्क माना गया है। बल्ब में जलने वाली बिजली—अंतरिक्ष में व्याप्त विद्युत् शक्ति की एक चिनगारी समझी जाती थी और दोनों का परस्पर सघन संबंध स्वीकार किया जाता था। अब व्यष्टि मस्तिष्क की एक चिनगारी और समष्टि मस्तिष्क की व्यापक अग्नि में समान गुणधर्मिता मानी गयी है। व्यक्तिगत मस्तिष्क की अपनी सत्ता और क्षमता है, किंतु वह सर्वथा स्वतंत्र नहीं है वरन् वह समष्टि मस्तिष्क का एक अंग है, जिसे इन दिनों वैज्ञानिक क्षेत्र में 'ब्रह्मांडीय चेतना' नाम दिया गया है। व्यक्ति समाज का एक अविच्छिन्न अंग है। एकाकी रहने लगे तो भी वह

समष्टि से पृथक् होने का दावा नहीं कर सकता। उसे अब तक जो ज्ञान, अनुभव, संस्कार, कौशल आदि मिला है—शरीर पोषण हुआ है—वह सब समाज का ही अनुदान है। एकाकी निर्वाह में भी आखिर कुछ उपकरण तो साथ रखे ही गये हैं। माला, कमंडल, कोपीन, कुल्हाड़ी जैसे साधनों के बिना तो गुफा में रहने वाले भी काम नहीं चला पाते। अग्नि का आविष्कार एकाकी व्यक्ति ने स्वयं नहीं किया है। इस प्रकार एकांतवासी कहलाने वाले का भूतकालीन और वर्तमान क्रियाकलाप समाज संबद्ध रहा। आगे भी अंतरिक्ष में चलने वाली असंख्य व्यक्तियों की असंख्य विचार-तरंगें अप्रत्यक्ष रूप से उसे प्रभावित करेंगी और वह स्वयं दूसरों को अपनी मनःतरंगों से प्रभावित करेगा, यह भी सामाजिक आदान-प्रदान हुआ।

व्यक्ति का शरीर निर्वाह एवं विकास समाज पर आश्रित है और अविच्छिन्न रूप से संबद्ध है। ठीक इसी प्रकार व्यष्टि मस्तिष्क स्वतंत्र दीखने पर भी समष्टि मस्तिष्क का एक अंग है। युद्ध और शांति के दिनों वातावरण में कितना अंतर होता है और लोकमानस की चिंतन-प्रक्रिया में कितना उतार-चढ़ाव रहता है ? यह सर्वविदित है। एक समय की लोकरुचि-मान्यता दूसरे समय से भिन्न होती है। लोगों का चिंतन-प्रवाह अपने समय में प्रायः एक ही दिशा में होता है। मनस्वी और स्वतंत्र चिंतकों के कुछ अपवाद तो सर्वदा पाये जाते रहते हैं, पर सामान्यतः चिंतन-प्रवाह की धारा एक ही दिशा में बहती है। अपने समय में पूर्वजों के कथन को प्रामाणिक मान लेने की श्रद्धा उखड़ रही है और तर्क तथा प्रमाणों पर आधारित बुद्धिवाद को मान्यता मिली है। किसी जमाने में व्यक्ति त्याग, बलिदान और आदर्शवाद अपनाने में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा लगाता था और इस क्षेत्र में जो जितना सफल होता था, उतना ही गौरव अनुभव करता था। आज स्थिति उससे सर्वथा भिन्न है। अपने समय में विलासिता की धूम है। संग्रह, उपभोग, पद-प्रदर्शन के प्रलोभन का भूत हर मस्तिष्क पर छाया हुआ है। इसे

लोकमानस कहा जा सकता है। समय-समय पर कई तरह के फैशन, कई तरह के व्यसन, कई तरह के क्रियाकलाप अनायास ही पनपते और देखते-देखते एक प्रथा-प्रचलन बन जाते हैं। सामान्य लोग उस प्रवाह में अनजाने ही बहने लगते हैं। इसे लोक-प्रवाह कहा जा सकता है।

'समूह मस्तिष्क' के अस्तित्व और उसके 'व्यक्ति मस्तिष्क' के साथ आदान-प्रदान की बात अब दिन-दिन अधिक स्पष्ट होती और अधिक प्रामाणिक बनती चली जा रही है। मनुष्य का अचेतन मन अत्यधिक अद्‌भुत और रहस्यमय होने की बात तथ्य रूप में स्वीकार कर ली गई है। चेतन मन की बुद्धि क्षमता उसकी तुलना में अति तुच्छ है। इसी प्रकार अंतरिक्ष में मनुष्यों के छोड़े हुए विचार और उनके आदान-प्रदान की जानकारी भी ऐसी ही उथली और कम महत्त्व की समझी जाने लगी है और रहस्यमय उस प्रवाह को माना जाने लगा है, जो समष्टि की अचेतन—चेतना से संबद्ध है।

मानवी चेतना मोटे तौर से शरीर निर्वाह एवं अहंता की तुष्टि तथा विस्मृति में संलग्न हलचल मात्र दृष्टिगोचर होती है। उसका प्रयोजन शरीर को सुखी तथा सक्रिय बनाये रखना भर प्रतीत होता है। लगता है शरीर मुख्य है और उसकी तृप्ति, पुष्टि, सुरक्षा एवं प्रगति के लिए सरंजाम जुटाने भर के लिए उसका सृजन एवं उदय हुआ है। आमतौर से ऐसा ही समझा जाता है। उपयोग भी इसी स्तर पर होता है। मस्तिष्क का शरीर—सुख के लिए जितना अधिक उपयोग हो सके, उतनी ही उसकी सफलता एवं सार्थकता मानी जाती है।

गहराई में उतरने पर बात कुछ दूसरी ही दृष्टिगोचर होती है। मस्तिष्क—चेतना के निवास का केंद्रीय शक्ति संस्थान है। यहाँ ब्रह्मांडीय चेतना के साथ जीव चेतना का मिलन-संगम होता है और उस आदान-प्रदान के आधार पर प्राणि जगत् को अनेकानेक सुविधाएँ एवं संवेदनाएँ उपलब्ध होती हैं। यह मस्तिष्कीय केंद्र इतना अधिक

शक्तिशाली है कि उसके माध्यम से पिंड और ब्रह्मांड की एकता का अनुभव एवं लाभ आश्चर्यजनक मात्रा में उपलब्ध किया जा सकता है।

पृथ्वी यों मोटे तौर से एकाकी लगती है। उसकी संपदा एवं हलचल अपनी ही परिधि में—अपने ही लिए—काम करती दिखाई पड़ती है, पर वस्तुतः वह अंतर्ग्रही आदान-प्रदान पर जीवित है। सूर्य की ऊर्जा का शोषण पृथ्वी का वातावरण करता है और उस ईंधन से जड़ परमाणुओं और चेतन जीवाणुओं की विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ चल सकने की सामर्थ्य मिलती है। पृथ्वी अपनी विशिष्टताओं को बनाये रहने में बहुत कुछ सूर्य पर निर्भर है। दूर रहते हुए भी वह पृथ्वी को इतना उदार दुलार देता है कि उसे देखते हुए पति-पत्नी अथवा प्रेमी-प्रेमिका जैसा रिश्ता मानने को जी करता है। पृथ्वी भी तो उसी का मुँह निहारते और परिक्रमा करते रहने में अपने जीवन की सार्थकता मानती है।

चंद्रमा का पृथ्वी पर कितना प्रभाव पड़ता है, यह समुद्र तट पर जाकर प्रतिदिन के सामान्य और पूर्णिमा, अमावस्या के ज्वार-भाटे देखकर सहज ही जाना जा सकता है। चंद्रमा को रसराज कहा गया है। कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष में वनस्पतियों तथा प्राणियों में सरसता की जो घट-बढ़ होती रहती है, उससे पता चलता है कि न केवल समुद्र को वरन् पृथ्वी की समग्र सरसता को वह व्यापक रूप से प्रभावित करता है।

यही बात अन्य ग्रहों की है। सौरमंडल के ग्रह-उपग्रह अपने-अपने स्तर के रंग-बिरंगे—छोटे-बड़े उपहार पृथ्वी को अनवरत् रूप से भेजते हैं। पृथ्वी भी चुप नहीं बैठी रहती, वह भी आदान-प्रदान का शिष्टाचार और समूह-कर्तव्य समझती है; तदनुसार अपने अनुदान अन्य ग्रहों को भेजती है। इन प्रेषणों का लाभ वे ग्रह भी उसी प्रकार उठाते हैं, जिस प्रकार कि पृथ्वी उनसे। इस आदान-प्रदान का महत्त्वपूर्ण केंद्र ध्रुवीय क्षेत्र है। अंतर्ग्रही आदान-प्रदान इन्हीं छिद्रों से

आते-जाते हैं। उत्तरी ध्रुव से ग्रहण की और दक्षिणी ध्रुव से विसर्जन की प्रक्रिया संपन्न होती रहती है। उत्तर में आदान का और दक्षिण में प्रदान का संयंत्र नियति ने फिट करके रखा है। उत्तर को मुख और दक्षिण को मलद्वार कह सकते हैं। जितना उपयोगी है उतना पचाकर पृथ्वी का शरीर अपने में धारण कर लेता है और जो अनावश्यक है, उसे मलरूप में विसर्जित कर देता है। प्राणि शरीर की तरह धरती भी एक शरीर है, जिसे अपनी जीवनचर्या की सामग्री अंतर्ग्रही शक्ति भंडार से उपलब्ध करनी पड़ती है। शरीर को हवा, पानी और अन्न भी तो बाहर से ही उपलब्ध करना पड़ता है। अंतर्ग्रही हाट से आवश्यक वस्तुएँ खरीदे बिना धरती की गुजर नहीं हो सकती। ठीक इसी प्रकार प्राणी को भी अपनी सूक्ष्म चेतनात्मक उपलब्धियों के लिए अंतर्ग्रही—ब्रह्मांडीय चेतना पर निर्भर रहना पड़ता है। मस्तिष्क मुख है। ग्रहण शक्ति उसी में है। जननेंद्रिय विसर्जन-संस्थान है। दोनों को प्राणि सत्ता के ध्रुव केंद्र कहा जा सकता है। ऊर्ध्व केंद्र को शिव और अधःसंस्थान को शक्ति संस्थान माना गया है। इन्हें ब्रह्मवर्चस् और कुंडलिनी केंद्र भी कहते हैं। इनके बीच पारस्परिक संबंध-संतुलन ठीक बना रहे, तो सब कुछ ठीक बना रहेगा और अभीष्ट प्रगति का लक्ष्य पूरा होता रहेगा। इनके बीच असंतुलन या अवरोध उत्पन्न होने से अपच और तद्जनित अनेकों रोग-विकार उत्पन्न होने लगते हैं।

इन पंक्तियों में चर्चा दक्षिण ध्रुव की नहीं, उत्तर ध्रुव की-मस्तिष्क की, की जा रही है। सामान्य मस्तिष्क शरीर और उससे संबंधित अनेकों प्रयोजनों पर सोचता-निर्णय करता एवं व्यवस्था बनाता है। असामान्य की स्थिति उच्चस्तरीय होती है। वह ब्रह्मांड चेतना के आदान-प्रदान की गति को तीव्र करता है और ऐसी उपलब्धियाँ उपार्जित कर लेता है, जिन्हें आश्चर्यजनक सिद्धियों के नाम से पुकारा जा सके।

हमें सामान्य जानकारियाँ इंद्रिय शक्ति के आधार पर मिलती हैं, पर यदि प्रसुप्त अतींद्रिय शक्ति को जाग्रत् किया जा सके तो व्यापक ब्रह्मांड सत्ता के साथ अपना संपर्क जुड़ सकता है और ससीम से असीम स्थिति में पहुँचा जा सकता है।

इस विश्व में जड़ और चेतना की द्विधा अपने-अपने नियत प्रयोजनों में संलग्न हैं। उनका वैभव भी महासमुद्र की तरह है, जिसके किनारे पर बैठकर मनुष्य ने सीप और घोंघे ही ढूँढ़े हैं। प्रकृत परमाणुओं में और जीवाणु घटकों में जो सामर्थ्य तथा चेतना विद्यमान है, उसका बहुत छोटा अंश ही जानना, हथियाना, संभव हो सका है। सब कुछ पाना खींच-तान से, छीना झपटी से नहीं, उसमें घुल जाने से ही संभव हो सकता है। समुद्र के पानी को कोई घड़ा कितनी मात्रा में अपने में भर सकेगा ? संपूर्ण समुद्र के साथ एकता स्थापित करनी हो तो घड़े को अपना जल समुद्र में मिला देना पड़ेगा, तभी तुच्छता को सुविस्तृत स्थिति में अनुभव कर सकना संभव होगा।

योग साधना का प्रयोजन अपनी ससीमता को असीमता के साथ जोड़ देना है। इस प्रयोजन में जितनी ही सफलता मिलती जाती है, उतनी ही मात्रा में मनुष्य उस वैभव पर आधिपत्य जमाता जाता है, जिसके प्रभाव को हम जड़-चेतन जगत् में अपने चारों ओर फैला हुआ देखते हैं। सीमाबद्ध स्थिति में हम तुच्छ और दरिद्र होते हैं, पर असीम के साथ जुड़ जाने पर महानता प्राप्त करने में कोई कमी नहीं रह जाती। संपन्नता से—भरे पूरे भंडार से हमारी भागीदारी जितनी अधिक होती है, उतनी ही अपनी स्थिति भी विभूतिमयी बनती चली जाती है। सिद्ध पुरुषों में देखी गईं विशिष्ट क्षमताएँ और कुछ नहीं, विराट् के साथ उनकी घनिष्ठता का आरंभिक उपहार भर है। बढ़-चढ़ी स्थिति तो ऐसी बन जाती है, जिसमें आत्मा और परमात्मा के बीच कोई बहुत बड़ा अंतर नहीं रह जाता, दोनों समतुल्य ही दीखते हैं।

❐ ❐

आत्मा की अमरता को जानें और प्राप्त करें

★ ★

बहिर्मुखी दर्शन और भौतिक सुखों की तृष्णा में मनुष्य जीवन कुछ इस तरह विशृंखलित होता है कि उसका गौण स्वरूप ही परिदृश्य होता है। उसकी आवश्यकताएँ प्रतिक्षण सम्मुख बनी रहती हैं और यथार्थ सत्ता का स्मरण तक नहीं आता। जब भी अवसर मिलता है, अंतरात्मा अपनी अपूर्णता पर छटपटाती रहती है किंतु उसे कोई रास्ता नहीं मिलता। प्रारंभ अनभिज्ञता से होता है और अंत एक ऐसे भटकाव में होता है, जहाँ से लाख हाथ-पाँव मारने पर भी छुटकारा नहीं हो पाता। यह पूर्णता, यह लक्ष्य, दिशा और गंतव्य क्या है ? इस प्रश्न को सुलझा लेना ही सबसे बड़ा चातुर्य है।

कबीरदास से किसी ने पूर्णता की परिभाषा पूछी तो कबीर बोले—

"लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।"

संत कवि तुलसीदास ने भी सियाराममय सारे संसार को कहा है। हम स्वयं ब्रह्म के एक अंश हैं और पूर्ण हैं।

अग्नि का स्वरूप प्रकाश है। उसके ऊपर राख की परत जम जाने पर उसका असली स्वरूप दिखलाई नहीं पड़ता। वह मात्र राख की ढेरी मालूम पड़ता है, लेकिन जैसे ही ऊपर का आवरण हटता है, वैसे ही प्रकाश पुंज दिखाई पड़ने लगता है।

मनुष्य के ऊपर भी अहंकार, काम, क्रोध, मद, मत्सर का आवरण चढ़ा हुआ है। इस आवरण के कारण उसका असली स्वरूप प्रकट नहीं हो पाता। मनुष्य देवस्वरूप है, आनंद-स्वरूप है,

अजर और अमर है। गीता में भी भगवान् ने आत्मा को अविनाशी कहा है।

पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर अपनी शक्तियों का अनंत स्रोत हमेशा बहाते रहते हैं। अपूर्णता की स्थिति में पड़े हुए मानवों के लिए उनका वरदान और प्यार सदैव मिलता रहता है। पूर्णब्रह्म अपने पूर्ण मानव का सेचन करते रहते हैं।

सेचन-क्रिया द्वारा मनुष्य अपने पूर्ण पिता से अनुदान प्राप्त कर पूर्णता की ओर बढ़ता जाता है। उसकी परिणति पूर्ण में लीन हो जाने में है।

मनुष्य पूर्ण है और पूर्ण से उत्पन्न हुआ है। सारा ब्रह्मांड अणु के रूप में घूम रहा है। ब्रह्म का छोटा स्वरूप अणु सर्वत्र नजर आ रहा है। अणुओं के सम्मेलन से पदार्थ का स्वरूप बनता है। मानव शरीर भी अणुओं से निर्मित है। ब्रह्म अणुरूप में है और हमारा शरीर अणुओं का समूह है, इसलिए हम स्वयं प्रभुमय हो गये।

अध्यात्म हमें उसी महानता की ओर चलने का संकेत करता है। जब हमारे रोम-रोम में, नस-नस में, आँख-कान, मन और मस्तिष्क में तथा विचारों में ब्रह्मसत्ता दिखाई देने लगे, तभी हम अध्यात्मवादी बन सकते हैं। निरहंकार होकर अपने कर्तव्यों का पालन करने से हममें अपार शक्तियाँ प्रकट हो जाएँगी।

पूर्णता की प्राप्ति अपने सहज धर्म के पालन करने में है। मनुष्य जन्म धारण करने के पहले ही स्व-धर्म की स्थापना हो गई रहती है। जन्म से पूर्व माता-पिता तथा समाज हमारे लिए तैयार रहता है। अतः माता-पिता और समाज के प्रति हमारा स्वधर्म पहले से तैयार है। इसके प्रति किया गया कर्तव्य हमें ब्रह्म के निकट पहुँचा देता है।

अनंत ब्रह्म से निकले हुए मानव ने अपने को सीमाबद्ध कर लिया है, इसी से उस अनंत सुख को प्राप्त नहीं करता। नदी का

जल जब तक समुद्र में मिल जाने के लिए उतावला रहता है, तब तक उसमें गति और तेज रहता है, लेकिन जब वह झील या तालाब का रूप धारण कर लेता है, तो उसकी गति रुक जाती है और उसमें सड़न पैदा हो जाती है।

मनुष्य ने अपने को सीमित बंधनों में बाँध लिया है। जाति, देश, संप्रदाय के घेरे में घिरा मनुष्य पूर्ण ब्रह्म को पा नहीं सका। इन हीन विचारों के कारण उसे अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं।

शरीर को प्रधानता न देकर इसमें बैठी हुई आत्मा को पहचानना आवश्यक है। आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं। परमात्मा का अंश होने से आत्मा भी उसी तरह शक्तिवान्, तेजवान् और सत्यवान् है, जैसा परमात्मा है। इसलिए आत्मा की अमरता को हम सहज जान सकते हैं। माया-मोहजनित—अज्ञान के कारण हम अपने को पहचान नहीं पाते। अतः पूर्णता की प्राप्ति से पूर्व आत्मबोध एवं आत्म-तत्त्व की अखंडता को समझना आवश्यक है।

भारतीय धर्म और दर्शन का सारा काया-कलेवर इसी एक ज्वलंत प्रश्न के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है वह अनेक तरह से यह समझाने का प्रयास करता है कि मनुष्य केवल भौतिक सुखों की वितृष्णा में भटककर शाश्वत चेतना की उपेक्षा न कर बैठे, इसलिए वह अनेक प्रकार से इस प्रश्न की आग को कुरेदता और जिज्ञासा जाग्रत् करने का प्रयास करता रहता है। कठोपनिषद् में एक ऐसी ही आख्यायिका आती है। आत्म जिज्ञासु नचिकेता यमाचार्य से आग्रह करता है—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये,
अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं,
वराणामेष वरस्तृतीयः।।

—कठोपनिषद् १।२०

भगवन् ! कुछ लोग कहते हैं आत्मा है, कुछ कहते हैं यह शरीर ही आत्मा है। मृत्यु के पश्चात् आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। सही तत्त्व क्या है ? सो आप मुझे बताएँ, यह मेरा तीसरा वर है।

नचिकेता की तरह संसार का प्रायः हर व्यक्ति जिसने गहन तप साधना, योगाभ्यास, स्वाध्याय और दीर्घकालीन मनन-चिंतन के बाद आत्मतत्त्व की स्पष्ट अनुभूति नहीं कर ली, इस विषय में द्विविधापूर्ण स्थिति में रहता आया है। आत्मा का कोई अस्तित्व है भी अथवा नहीं, यह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जिसे सुलझा न पाने वाले जीवन भर उलटी और अंधकारपूर्ण दिशाओं में भटकते रहते हैं, पर जो इस स्थिति के बारे में निश्चिंत होकर आत्मानुभूति कर लेते हैं, वे अपना जीवन धन्य मानते हैं।

इस संबंध में हिंदू दर्शन की मान्यताएँ बिल्कुल स्पष्ट हैं। महर्षि चरक और इसी तरह के थोड़े ही विचारक हुए हैं, जिन्होंने आत्मा को शरीर या द्रव्य की चेतना के अतिरिक्त कुछ नहीं माना, जबकि अधिकांश तत्त्ववेत्ता उसे शरीर से भिन्न एक शाश्वत और स्वतंत्र तत्त्व मानते रहे हैं। योगाभ्यास की ऐसी जटिल विधियाँ खोज निकाली गई हैं, जो जीवित अवस्था में ही आत्म-चेतना को शरीर से बाहर कर लेने और स्वेच्छा से किसी भी शरीर में प्रविष्ट होने के प्रमाण प्रस्तुत कर चुकी हैं। इस कथन की पुष्टि में—

(१) जगद्गुरु शंकराचार्य ने मंडन मिश्र की धर्मपत्नी भगवती भारती से शास्त्रार्थ करने के लिए काम-शास्त्र का अध्ययन आवश्यक होने पर महिष्मती नगर के राजा के शरीर में "परकाया प्रवेश" किया था। वे प्रतिदिन अपनी आत्म-चेतना को शरीर से निकाल लेते थे। शव जंगल में पड़ा रहता था और उनकी आत्मचेतना राजा के शरीर में बनी रहती थी। रात्रि के समय वे अपने निजी शरीर में आ जाते थे, तब राजा का शरीर शव हो

जाता था। एक ही आत्मा द्वारा दो शरीरों के उपयोग के इस उदाहरण से आत्मा का पृथक् अस्तित्व प्रतिपादित होता है।

(२) सन् १६३६ में पश्चिमी कमान के सैनिक कमांडेंट श्री एल० पी० फैरेल ने आसाम-बर्मा सीमा पर एक योगी को अपनी आँखों अपने वृद्ध शरीर से निकलकर एक स्वस्थ युवक के शव में प्रविष्ट होकर जीवित देखा था। यह घटना अखंड-ज्योति मई १६७० के अंक पेज २-३० में छपी है।

(३) सामान्यतः शरीर का जीवन श्वास क्रिया पर आधारित माना जाता है, पर संत हरदास ने महाराज रणजीतसिंह, तत्कालीन अंग्रेज जनरल बेंटुरा और अनेक अंग्रेज पदाधिकारियों की उपस्थिति में एक माह की समाधि लगाकर दिखा दिया कि आत्मा का शरीर से उतना ही संबंध है, जितना किसी मशीन से विद्युत् शक्ति का। आत्मा के न रहने पर शरीर मृत हो जाता है।

यह सैकड़ों में एकाध उदाहरण है, जबकि भारतीय धर्म-शास्त्र और तत्त्व-दर्शन के पन्ने-पन्ने ऐसी घटनाओं से भरे पड़े हैं। भारतीय आचार्य इस संबंध में पूर्णतया आश्वस्त हैं और बताते हैं—

व्यतिरेकस्तद् भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत्।

—वेदांत० ३।३।५४

अर्थात्—शरीर और आत्मा एक नहीं हैं। शरीर में रहते हुए भी आत्मा का अभाव हो जाने से शरीर को किसी बात का ज्ञान नहीं हो सकता।

आत्मा की सत्ता और स्वतंत्रता के संबंध में करोड़ों वर्ष पूर्व स्थापित ऋषियों की मान्यताएँ अब विज्ञान की कसौटी पर भी सत्य सिद्ध होती जा रही हैं। इस संबंध में शरीर का निर्माण करने वाले जीव-कोशों को बड़ा महत्त्व दिया जा रहा है। जीवित शरीर और मृत शरीर में क्या अंतर है ? इस संबंध में अमेरिका की रॉकफेलर संस्था के डॉ० बेकाफ और डॉ० स्टेनली ने बहुत परिश्रम और

खोजें की हैं। यद्यपि उन्होंने अपना अंतिम मत प्रतिपादित नहीं किया, पर यदि भारतीय तत्त्वदर्शन को सामने रखकर उन खोजों पर विचार किया जाये तो इन वैज्ञानिक उपलब्धियों से भी वही तथ्य प्रतिध्वनित होंगे; जो भारतीय दर्शन से ध्वनित होते हैं।

इन वैज्ञानिकों का कथन है कि जीवित अणु रासायनिक प्रक्रिया के प्रभाव से स्वयं ही उत्पन्न होते हैं। अर्थात् आत्मा शरीर की रासायनिक चेतना है, पर वे अणु तभी तक उत्पन्न होते हैं, जब तक कि वे जीवित पदार्थ (प्रोटोप्लाज्मा-जिससे कि शरीर का निर्माण होता है) से संबंधित रहते हैं। अर्थात् चेतना का संबंध चेतना से ही है, इस कथन के अनुसार आत्मा शरीर से भिन्न है।

यह एक स्वयं सिद्ध सत्य है कि मृत्यु के अनंतर शरीर की सारी तन्मात्राएँ समाप्त हो जाती हैं। जो प्राणी अभी तक चलता, फिरता, खाता-पीता, सूँघता, मल-उत्सर्जन करता, खाँसता-छींकता, जम्हाई लेता, सोचता, बोलता, परामर्श करता, प्रेम, दया, करुणा या घृणा-द्वेष और क्रोध व्यक्त कर रहा था; मृत्यु होने के बाद शरीर ज्यों का त्यों होने पर भी अब वैसी क्रियाएँ क्यों नहीं करता ?

वैज्ञानिक के समक्ष प्रश्न यह था कि प्रत्येक अस्तित्व का भार होना चाहिए। यदि प्रकाश-कणों के इलेक्ट्रॉन अत्यधिक तीव्र गति से गतिशील न रहे होते और इस कारण उन्होंने अपने आपको गुरुत्वाकर्षण से मुक्त न कर लिया होता तो प्रकाश की मात्रा को भी तौलना संभव हो जाता। शक्तियाँ—चाहे वह विद्युत् हो, प्रकाश, ध्वनि, ताप या चुंबक ही उनकी परिभाषा यह है, उनमें भार नहीं होता, वे वस्तुएँ प्रभाव से ही जानी जा सकती हैं। केवल प्रभाव से ही किसी वस्तु के विश्लेषण को मानने के लिए वैज्ञानिक तैयार नहीं होते। इसी कारण विज्ञान और मनोविज्ञान दोनों में मेल नहीं हो पाता और एक सनातन प्रश्न इस बौद्धिक प्रखरता के युग में भी अधूरे का अधूरा छूट जाता है।

प्रकाश कणों या दिव्य-ज्योति के रूप में प्रवाहमान आत्मा के बारे में भारतीय तत्त्वदर्शियों के यह कथन कि आत्मा (१) सनातन है (२) आत्मा सर्वव्यापी है (३) आत्मा स्वाधीन है, पर कर्म-बंधनों में, बँधा होने के कारण वह शरीरों में आया जाया करता है; अब विज्ञान के भी प्रतिपाद्य विषय बन गये हैं। अमेरिका की हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक डॉ० जेम्स वाटसन और इंग्लैंड की कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के डॉ० फ्रांसिस क्रिक के अनुसार जीवित-कोश (सेल—अर्थात् जीवित द्रव्य का छोटे से छोटा टुकड़ा, जिससे शरीर बनता है) के नाभिक (न्यूक्लियस) में ही ज्ञान व संस्कार—गुणसूत्र (क्रोमोसोम) पाये जाते हैं। यह पैड़ीदार और बीच-बीच डोरी में लगी गाँठों की तरह होते हैं। इन गाँठों को जीन्स (संस्कार सूत्र) कहते हैं। नाभिक प्रकाश तत्त्व है और उसी में जीवन तत्त्व होना—उसका प्रकाश पुंज होना प्रमाणित करता है। यही निकल जाने से शरीर निष्प्राण हो जाता है। इससे सिद्ध है कि वह पदार्थ से पृथक् अस्तित्व वाला है।

मनुष्य शरीर में ६०० खरब जीवित कोश पाये जाते हैं। इन कोशों में जितने जीन्स होते हैं, उनकी लंबाई एक 'कोश' में ५ फुट तक हो सकती है। ६०० खरब कोशों में जीन्स की—लंबाई ३००० खरब फुट होगी, यह एक अनुमानित लंबाई है। वास्तविकता तो अनंत है। यदि अपना ज्ञान इस चेतना के सूक्ष्मत्व में स्थिर कर दिया जाये तो मनुष्य अपने आपको विश्वव्यापी चेतना के रूप में ही पायेगा। इसी का नाम आत्मानुभूति या आत्म-साक्षात्कार है। यह स्थिति कठिन अभ्यास से ही बन पाती है, जब तक मनुष्य अपने इस विराट् स्वरूप को नहीं पहचानता और भौतिक-पदार्थों के सुख की इच्छा किया करता है तब तक वह जीव है, बंधन में पड़ा हुआ मानवेतर योनियों में भ्रमण करता रहता है। आत्मा में स्थिर हो जाने का कदाचित् अवसर मिल जाता है तो यही जीव युग-युगांतरों के

कल्मष-कषाय धोकर इसी शरीर से स्वर्ग और मुक्ति का रसास्वादन करता हुआ अपना पारमार्थिक लक्ष्य पूरा करता है।

जीव-विज्ञान के अनुसंधानों में भी कोशिका (सेल्स) को सबसे अधिक आश्चर्यजनक रूप में देखा गया है। उसे वैज्ञानिक ब्रह्मांड का छोटा-सा नक्शा मानते हैं। उसके अंदर सूक्ष्म रूप में वह सब कुछ है, जो इन स्थूल आँखों से दिखाई देता है। "रोम-रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मांड" वाली तुलसीदास की उक्ति को विज्ञान ने कोशिका के रूप में सत्य मान लिया।

किंतु हम जो कुछ देखते हैं, उससे भी अधिक आश्चर्यजनक, रहस्यपूर्ण, कौतूहल-वर्द्धक और महत्त्वपूर्ण वह है, जिसकी दूरी और सीमाएँ इतनी व्यापक और विशाल हैं कि हमारी आँखें उसे देखने में समर्थ नहीं हुईं। हमारे शास्त्रों में उस व्यापकता और अनंतता को परमात्मा कहा है और बताया है कि उसे सूक्ष्म होकर ही जाना जा सकता है—

वालाग्रशतसाहस्रं तस्य भागस्य भागिनः।
तस्य भागस्य भागार्धं तत्क्षये तु निरंजनम्।।
पुष्प मध्ये यथा गंधः पयोमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं पाषाणेष्विव कांचनम्।।
एवं सर्वाणि भूतानि मणौ सूत्र इवात्मनि।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः।।

—ध्यान बिंदूपनिषद् ४-६,

अर्थात्—बाल के सबसे छोटे टुकड़े का भी सौवाँ भाग, उसका भी हजारवाँ भाग और उसका भी आधे का आधा भाग (सूक्ष्मातिसूक्ष्म) क्षय हो जाने पर निरंजन होता है। जिस प्रकार फूलों में गंध, दूध में घृत, तिल में तेल, पाषाण में स्वर्ण और माला के दाने सूत में पिरोये जाते हैं, उसी प्रकार सब भूत निरंजन में

व्याप्त हैं। स्थिर बुद्धि वाला, ज्ञानी मोह रहित होकर ऐसे ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करके उसमें स्थिर रहता है।

आर्ष वैज्ञानिकों के इस कथन की सत्यता का सर्वप्रथम किंग्स कॉलेज लंदन के डॉ. विल्किंस ने अध्ययन किया। उन्होंने बताया कोशिका अपने आप में उतनी आश्चर्यजनक नहीं है, जितनी उसके अंदर के दूसरे कण और क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से नाभिक या केंद्रक (न्यूक्लियस) और उसमें लिपटे हुए क्रोमोसोम, स्पूतनिक की तरह कोशिका के आकाश में स्थित 'सेंटोसोम' जो कोशों के विकास में सहायक होता है, पारदर्शी गुब्बारे जैसा वह भाग जो भोजन को शक्ति में बदलता है, यह सब एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक हैं। न्यूक्लियस कोशिका का वह गुंबदाकार भाग है, जहाँ से पूरे शरीर का सूत्र-संचालन होता है। गुण सूत्र (क्रोमोसोम) की जटिलता और भी अधिक है, क्योंकि उन पर व्यक्ति के गुण, शारीरिक विकास और आनुवांशिकता आधारित है, इसलिए इनकी खोज में वैज्ञानिक तीव्रता से जुट गये।

'जीन्स' जिन्हें आज का वैज्ञानिक जीवन की इकाई मानता है, इन्हीं गुण-सूत्रों का ही एक अत्यंत सूक्ष्म अवयव है। जिस प्रकार एक डोरे में थोड़ी-थोड़ी दूर पर गाँठें लगा देते हैं, इन गुण सूत्रों में भी गाँठें लगी हुई हैं; इन गाँठों को ही 'जीन्स' कहते हैं। एक कोशिका के जीन्स जो कुंडली मारे बैठे रहते हैं, उन्हें यदि खींचकर सीधा कर दिया जाये तो ५ फीट तक लंबे पहुँच सकते हैं। हमारा शरीर चूँकि कोशिकाओं की ईंटों से बना हुआ होता है और एक युवक के शरीर में यह कोशिकाएँ ६०० खरब तक होती हैं, इसलिए यदि संपूर्ण शरीर के 'जीन्स' को खींचकर रस्सी बनाई जाये तो वह इतनी बड़ी होगी, जिससे सारे ब्रह्मांड को नाप लिया जाना संभव हो जायेगा।

आत्मा संपूर्ण जगत् में व्याप्त है। संभवतः यह जीन्स उस भारतीय मत की पुष्टि करें, पर जीन्स को ही आत्मा नहीं मान लेना चाहिए। वह चेतन आत्मा का एक अणु हो सकता है, पर आत्मा नहीं। सूर्य एक आत्मा है, उसकी एक किरण वहाँ से चलती है और किसी स्थान पर वहाँ की ऊर्जा पहुँचाती रहती है। बहुत संभव है उसी तरह उस किरण-जाल से सूर्य भी स्थान-स्थान की खोज-खबर लेता रहता हो। यह किरणें भी प्रकाश के छोटे-छोटे अणु (एटम) से बने हैं और प्रत्येक अणु में सूर्य जैसी क्षमताएँ विद्यमान होती हैं। उतनी ही ऊर्जा (एनर्जी), उतनी ही चमक और वैसी ही आकृति, पर वह सूर्य नहीं हो सकता। वह तो सूर्य का एक अणु मात्र है। अणु को पकड़ा, तोड़ा और मरोड़ा जा सकता है, पर सूर्य को तोड़ डालने की शक्ति विज्ञान ने कहाँ पाई है ? सूर्य अपने आप में एक स्वतंत्र सत्ता है।

'जीन्स' भी ऐसे ही हैं यद्यपि मनुष्य का कुछ छोटा या बड़ा होना, उसके बाल काले, भूरे या घुँघराले होना, नाक चौड़ी, लंबी या पतली होना, आँखें नीली, काली या भूरी होना यह सारी बनावट जीन्स की बनावट पर निर्भर है। यदि विस्तृत खोज की जाये तो गर्भस्थ शिशु का एक दिन इच्छानुवर्ती निर्माण संभव हो जायेगा। आनुवंशिक (हेरेडेटरी) रोगों का इलाज भी तब संभव है, जब जीवधारी के पृथ्वी पर आने से पहले ही कर दिया जा सके, बहुत संभव है। आदम, ईसा या कर्ण जैसा अमैथुनी मनुष्य भी बनाया जा सके, पर यह सब मनुष्य की इच्छा पर नहीं; किसी पर्दे में काम करने वाली शक्ति की इच्छा पर ही होगा। मनुष्य जीवों का विकसित रूप नहीं वरन् वह अमैथुनी क्रिया द्वारा ही पैदा हुआ है, यह भारतीय दर्शन की मान्यता है, जो आज की वैज्ञानिक दृष्टि में सत्य सिद्ध हो रहा है; पर वह मनुष्य के लिए नितांत संभव नहीं।

यह बात हम नहीं, वह वैज्ञानिक भी जिन्होंने जीन्स का भी रासायनिक विश्लेषण कर लिया है, मानने लगे हैं। डॉ० विल्किंस ने बताया कि जीन्स सर्पिल आकार के अणुओं से बने होते हैं, यह अणु 'डी ऑक्सी राइबो न्यूक्लिइक एसिड' संक्षेप में डी० एन० ए० के नाम से जाने जाते हैं। इन्हें केवल एक लाख गुना बढ़कर दिखाने वाली (मैग्नीफाइंग पावर) खुर्दबीन (माइक्रोस्कोप) से ही देखा जाना संभव है। इस दिशा में हार्वर्ड यूनिवर्सिटी अमेरिका के डॉ० जेम्स वाट्सन और कैंब्रिज यूनिवर्सिटी की कैकेंडिश लैबोरेटरी के डॉ० फ्रांसिस क्रिक ने विस्तृत अनुसंधान किये। उन्होंने चार प्रमुख नाइट्रोजन यौगिकों १. एडीनाइन, २. साइटोसाइन, ३. गुएनाइन और थाईमाइन एवं फास्फेट व एक प्रकार की शर्करा के रासायनिक संयोग से प्रयोगशाला में ही डी० एन० ए० अणु (मालेक्यूल) का मॉडल बनाकर सारे संसार को आश्चर्यचकित कर दिया। यह जीवन-जगत् में हलचल पैदा करने वाली खोज थी। उसके आधार पर अमैथुनी कृत्रिम गर्भाधान ही संभव न हुआ वरन् चिकित्सा और शरीर विकास की अनेक अद्भुत सफलताओं का स्रोत खुल गया। डी० एन० ए० की सफलता एक दिन ऐसे शरीर बना सकेगी, जो बाजारों में साधारण मनुष्यों की तरह ही घूमा-फिरा करेंगे, फिर भी कोई समझ न पायेगा कि क्या ये कृत्रिम मानव हैं ?

इतनी सफलता पा जाने के बाद क्या वैज्ञानिक संतुष्ट हो गये या उन्होंने यह विश्वास कर लिया कि उन्होंने आत्मा पर अधिकार कर लिया है। नहीं, नहीं, नहीं। १९६२ में इन तीन वैज्ञानिकों को जब इस संबंध में नोबुल पुरस्कार दिया गया तो उन्होंने ही कहा—"सूत्र हाथ में आ गया है। सूत्रधार नहीं। संभव है, एक दिन वह भी हाथ लग जायेगा और तब आज जो मनुष्य प्रकृति के इशारे पर नाचता है, तब प्रकृति उसके इंगित पर चलने लगे।" पर अभी तो स्थिति यह है कि मनुष्य जीवन की सारी गतिविधियाँ

जिनका आदेश जीन्स के द्वारा मिलता है, वह किसी और की है। जीन्स तो उसके आदेश कोशिका तक पहुँचाते रहते हैं। एक कोशिका से दूसरी कोशिका तक सारे शरीर का कार्य संचालन जीन्स के द्वारा दिये गये आदेशों पर चलता है। यह आदेश भी किसी भाषा में नहीं होते वरन उसकी भी एक रासायनिक पद्धति है।

जीन्स से कोई तत्त्व कोशिका में गया तो वह भाग खाली होते ही ऊपर से कोई और तत्त्व की पहुँचाने की आवश्यकता प्यास रूप में प्रकट हुई। किसी ने कहा नहीं, पर हम उठे और पानी पिया पानी पीने की प्रेरणा जीन्स ने कोशिकाओं को दी, हाथ ने उठाकर पी लिया; पर जीन्स को वह आदेश किसने दिया ? क्या जीन्स ही की इच्छा थी वह ? यदि ऐसा होता तो प्रयोगशाला में बनने वाला डी० एन० ए० भी अपनी इच्छा से विकसित होने लगता।

अभी इस जीन्स से भी कोई अति सूक्ष्म और सर्वव्यापी सत्ता है, इसका प्रमाण उसी की संरचना से मिल जाता है। उदाहरणार्थ डी० एन० ए० पर ही लगभग एक अरब एमीनो एसिड क्रम से लगे रहते हैं। इन्हें वह अक्षर कह सकते हैं जो मिलकर जीन्स की आकांक्षा को व्यक्त करते हैं, जैसे भूख-प्यास, बोलना, उठना-बैठना, मिलना-जुलना, सोना, स्वप्न देखना आदि। इनका ही क्रम मनुष्य के गुणों का निर्धारण करता है। मरोड़ी हुई सीढ़ी की शक्ल में यह अणु एक जीन्स की शक्ल में दिखाई देते हैं। उन सब की अनुभूतियाँ अलग-अलग हैं। इससे यह पता चलता है कि जीन्स जहाँ कोशिका की आत्मा है, वहाँ वह शरीरगत संपूर्ण चेतना का एक अंग भर है और उससे अधिक कुछ नहीं।

शरीर को सामाजिकता के आधीन रहना पड़ता है, ऐसा न होता, प्रत्येक जीन्स एक स्वतंत्र अस्तित्व होता तो वह शरीर के प्रत्येक अंग से मनुष्य पैदा करना आरंभ कर देता। किंतु ऐसा वह

नहीं कर सकता। मनुष्य भी परमात्मा का अंश है, वह अपने दायरे में निर्माण, पालन और संहार के कार्य किया करता है, पर वह विश्व-इच्छा के आधीन है। उसकी अपनी सत्ता उस सामाजिकता से अलग रही होती तो वह अपनी इच्छा से जन्म और मृत्यु का स्वामी हो जाता। ब्राह्मी स्थिति में भले ही वह वैसा हो जाता है, पर मनुष्य जब तक मनुष्य है, तब तक उसे उस इच्छा के आधीन रहना पड़ता है, यही स्थिति जीन्स की भी है। वह आत्मा का अणु हो सकते हैं, आत्मा नहीं। आत्मा की खोज के लिए अभी लंबे प्रयोग की आवश्यकता है।

कोशिका के ऊपरी आवरण को, जिसे प्रोटीन कहते हैं, अब वैज्ञानिक पद्धति से बनाना संभव हो गया है। दूध के प्रोटीन से ऊन बना लेने के बाद वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रोटीन बना लेना कोई कठिन बात नहीं है। सन् १९६६ में डॉ० खुराना को तो इसी विषय में नोबुल पुरस्कार भी मिला है। एक ओर प्रोटीन पर, दूसरी ओर डी० एन० ए० पर विस्तृत गवेषणाएँ चल रही हैं। जितनी सफलताएँ मिलती जा रही हैं, उतनी ही आत्मा के किसी अति सूक्ष्म तत्त्व और सर्वव्यापी होने की पुष्टि बढ़ती ही जा रही है। अभी यह नहीं मान लेना चाहिए कि डी० एन० ए० का निर्माण करके वैज्ञानिकों ने आत्मा को जान लिया। भले ही उन्हें वैसी कोई इकाई मिल गई हो।

अभी कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनको सुलझाया जाना आवश्यक है। उदाहरण के लिए इस बात की खोज कर लेने के बाद भी कि जीन्स (अर्थात् कोशिका का वह सूक्ष्मतर भाग जिसमें चेतना विद्यमान रहती है) एक अमर और अविनाशी तत्त्व है। वैज्ञानिक अभी तक यह गुत्थी नहीं सुलझा पाये कि यदि वह अमर है तो मृत्यु के बाद जाता कहाँ है ?

इस संबंध में उनके प्रतिपादन किसी भी बुद्धिजीवी को संतुष्ट नहीं कर पाते। उनका कथन है कि मृत्यु के बाद "जीन्स" अपनी विश्वयात्रा में पदार्थ के माध्यम से निकल पड़ते हैं। उदाहरण के लिए हिंदुओं में शव-दाह की प्रथा है। जला देने के बाद जीन्स-राख में चले गये। राख पानी में। पानी से कुछ जीने-पीने वाले जीव-जंतुओं, कुछ पौधों आदि में विभक्त हो गये। पुनर्जन्म की घटनाओं का विश्लेषण वैज्ञानिक लोग इसी आधार पर करते हैं कि मृतक "क" के जीन-गंगा से गंगा की किसी नहर में, नहर से किसी सिंचित खेत, खेत से पौधे और पौधे से फल, फल खा लिया किसी व्यक्ति ने उससे वह संस्कार सूत्र चले गये उसके पुत्र में, इस तरह मृतक "क" की स्मृतियाँ "ग" के पुत्र के मस्तिष्क में जा सकती हैं। उसे जीवात्मा का पुनर्जन्म नहीं कह सकते। किंतु यह प्रतिपादन इतना जटिल है कि स्वयं नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिक ही उसे नहीं मानते, न मानने के निम्न कारण हैं :

(१) जीन्स एक अविच्छिन्न शृंखला होते हैं, यदि दूर-दूर ही छितर जाते हैं तो अनेक लोग एक ही पुनर्जन्म के दावेदार हो सकते हैं; किंतु अभी तक ऐसी कोई घटना प्रकाश में नहीं आयी।

(२) यह एक समय साध्य प्रक्रिया है, जबकि पुनर्जन्म की घटनाओं में कई बार तो दो-तीन वर्ष से भी अधिक का समय नहीं लगता।

(३) ऐसी घटनाओं में उपरोक्त प्रतिपादन की कोई श्रृंखला नहीं जुड़ पाती, जिससे यह स्पष्ट हो कि अमुक व्यक्ति के जीन्स अमुक स्थान पर किस माध्यम से पहुँचे ?

इस संदर्भ में भारतीय दर्शन की मान्यताएँ अधिक स्पष्ट है। गीताकार ने कहा है कि—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजोः नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। (गीता २.२०)

यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा होकर के फिर होने वाला है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने पर भी यह नाश नहीं होता।

मृत्यु की मीमांसा करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। (गीता २.२२)

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर नये शरीरों को प्राप्त होता है।

स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर के व्यापार का माध्यम है, जिस प्रकार बढ़ई का बसूला अर्थात्—इच्छाओं, वासनाओं को पूरा करने के लिए सूक्ष्म शरीर एक यंत्र की भाँति स्थूल शरीर का उपयोग करता है। ऐसी घटनाएँ जो स्थूल जगत् से परे की प्रतीत होती हैं, स्थूल उपकरणों से प्रयोजन पूरा न होने के कारण दूसरे माध्यमों से सूक्ष्म शरीर की प्रयोजन पूर्ति मात्र रहती है और जब यह यंत्र बेकार, कूड़ा-कबाड़ा हो जाता है तो सूक्ष्म देह इसे उसी प्रकार फेंक देता है जैसे फटा हुआ वस्त्र। अंततः यही कहना पड़ेगा, जिसे हम अपना शरीर कहते हैं, जिसके लिए इतने मोहासक्त रहते हैं और कुछ नहीं, सूक्ष्म देह की वासनाओं, इच्छाओं को पूरा करने का माध्यम भर है।

मेटाफिजिक्स, पैरासाइकोलॉजी आदि वैज्ञानिक आधारों का ज़ितना विकास होता चलेगा, विज्ञ जगत् उसी अनुपात से आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करता चलेगा और पिछले दिनों हमें जिन अवस्थाओं में भटकना पड़ा है, उनसे छुटकारा मिलता चलेगा।

❐ ❐

स्थूल से प्यार—सूक्ष्म का तिरस्कार क्यों ?

★ ★

शरीर केवल वह एक ही नहीं है जिसे हम धारण किये हुए हैं और जो दीखता—अनुभव होता है, उसके भीतर दो और शरीर हैं, जिन्हें सूक्ष्म और कारण शरीर कहते हैं। इनमें सूक्ष्म शरीर अधिक सक्रिय और प्रभावशाली है। मरण के उपरांत उसी का अस्तित्व रह जाता है और उसी के सहारे नया जन्म होने तक की समस्त गतिविधियाँ चलती रहती हैं।

मरने के उपरांत इंद्रियाँ, मन, संस्कार तथा पाप-पुण्य साथ जाते हैं। मरण से पूर्व वाले जन्म का स्मरण भी इसी शरीर में बना रहता है, इसलिए अपने परिवार वालों को पहचानता और याद भी करता है। अगले जन्म में इस पिछले जन्म के संस्कारों को ढोकर ले जाने में भी यह सूक्ष्म शरीर ही काम करता है। वस्तुतः मरण के पश्चात् एक विश्राम जैसी स्थिति आती है, उसमें लंबे जीवन में जो दिन-रात काम करना पड़ता है, उसकी थकान दूर होती है। जैसे रात को सो लेने के पश्चात् सबेरे ताजगी आती है, उसी तरह नये जन्म के लिए इस मध्य काल के विश्राम से फिर कार्य क्षमता प्राप्त हो जाती है। जिनका मृत्यु के उपरांत तुरंत पुनर्जन्म हो जाता है उन्हें पूरा विश्राम न मिल पाने से थकान बनी रहती है और शरीर तथा मन में अस्वस्थता देखी जाती है।

सूक्ष्म शरीर इस जन्म में भी स्थूल शरीर के साथ ही सक्रिय रहता है। रात्रि को सो जाने के उपरांत जो स्वप्न दीखते हैं, वह अनुभूतियाँ सूक्ष्म शरीर की ही हैं। दिव्य दृष्टि, दूरश्रवण, दूरदर्शन, विचार संचालन, भविष्य ज्ञान, देव दर्शन आदि उपलब्धियाँ भी सूक्ष्म शरीर के माध्यम से ही होती हैं। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और

समाधि की उच्चस्तरीय योग साधना द्वारा इसी शरीर को समर्थ बनाया जाता है। ऋद्धियों और सिद्धियों का स्रोत इस सूक्ष्म शरीर को माना जाता है।

भारतीय योग शास्त्रों में सूक्ष्म शरीर को भी स्थूल शरीर की तरह ही प्रत्यक्ष और प्रमाणित माना गया है और उसका स्वरूप तथा कार्यक्षेत्र विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वह दुर्बल कैसे हो जाता है और उसे सशक्त कैसे बनाया जा सकता है ? इसका विस्तृत विवेचन किया गया है। कहा गया है, सूक्ष्म शरीर में विकार उत्पन्न हो जाने से स्थूल शरीर भी अस्वस्थ और खिन्न रहने लगता है। इसलिए समग्र समर्थता के लिए स्थूल शरीर की ही तरह सूक्ष्म शरीर का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

यदि आत्मा को अमर माना जाये, मरणोत्तर जीवन को मान्यता दी जाये तो सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व भी मानना पड़ेगा। स्थूल शरीर तो मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाता है। नया शरीर तुरंत ही नहीं मिलता, उसमें देर लग जाती है। इस मरण और जन्म के बीच की अवधि में प्राणी को सूक्ष्म शरीर का सहारा लेकर ही रहना पड़ता है। शरीर धारण कर लेने के बाद भी उसके अंतर्गत सूक्ष्म और कारण शरीरों का अस्तित्व बना रहता है। अतींद्रिय ज्ञान उन्हीं के द्वारा होता है और उपासना, साधना द्वारा इन्हीं दो अप्रत्यक्ष शरीरों को परिपुष्ट बनाया जाता है। यह अंतःशरीर यदि बलवान् हो तो बाह्य शरीर में तेज, शौर्य, प्रकाश, बल और ज्ञान की आभा सहज ही प्रस्फुटित दीखती है। उत्साह और उल्लास भी सूक्ष्म शरीर की निरोगिता का ही परिणाम है।

स्वर्ग और नरक का जैसा कि वर्णन है, उसका उपभोग सूक्ष्म शरीर द्वारा ही संभव है। पिछले जन्म के ज्ञान, संस्कार, गुण, रुचि आदि का अगले जन्म में उपलब्ध होने का आधार भी यह सूक्ष्म शरीर है। भूत-प्रेतों का अस्तित्व इसी परोक्ष शरीर पर निर्भर है

और दिव्य अनुभूतियाँ, योग की सिद्धियाँ, स्वप्नों पर परिलक्षित सच्चाइयाँ आदि प्रक्रियाएँ सूक्ष्म शरीर से ही संभव हो सकती हैं। यदि स्थूल शरीर मात्र का अस्तित्व माना जाये तो फिर नास्तिकों का वही मत प्रतिपादित होगा, जिसमें कहा गया है कि—मृत्यु के बाद फिर आना कहाँ होगा ? जब तक जीना है, सुख से जियो और ऋण लेकर घी पियो।

इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि महर्षि हर्ष के शिष्य व्याड़ी ने एक बार मगध के सम्राट महापद्मनंद के मृत शरीर में परकाया प्रवेश किया था। पद्मनंद के मंत्री शकटार उस समय सिकंदर के आक्रमण से चिंतित थे, तभी मृत पद्मनंद के जीवित हो उठने पर उन्हें आश्चर्य हुआ। वे वस्तुस्थिति को समझ गये, अतएव राजा को जीवित ही रखने की इच्छा से उन्होंने व्याड़ी की लाश को जलवा दिया। इस पर नंद के शरीर में प्रविष्ट व्याड़ी को तब तक उसी शरीर में रहना पड़ा, जब तक चंद्रगुप्त ने उसकी हत्या नहीं की।

रामकृष्ण परमहंस ने महाप्रयाण के उपरांत भी विवेकानंद को कई बार दर्शन तथा परामर्श दिये थे। पुराणों में तो पग-पग पर ऐसे कथानकों का उल्लेख है।

थियोसोफिकल सोसाइटी की जन्मदात्री मैडम ब्लॉवट्स्की के बारे में कहा जाता है कि वे अपने को कमरे में बंद करने के उपरांत भी जनता को सूक्ष्म शरीर से दर्शन और उपदेश देती थीं। कर्नल टाउन शेड के बारे में भी ऐसे ही प्रसंग कहे जाते हैं। पाश्चात्य योग साधकों में से हैर्वटलमान, लिंडार्स, एंड्रयू जैक्सन, डॉ० माल्थ, जेल्ट, कारिंगटन, डुरावेल मुलडोन, ऑलिवर लॉज, पावस, डॉ० मेस्मर, ऐलेक्जेंड्रा, डेविडनीट, ब्रंटन आदि के अनुभवों और प्रयोगों में सूक्ष्म शरीर की प्रामाणिकता सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण उपस्थित किये गये हैं। जे० मुलडोन अपने स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर को पृथक् करने के कितने प्रदर्शन भी कर चुके थे ?

इनमें इस सबकी चर्चा अपनी पुस्तक 'दी प्रोजेक्शन ऑफ एस्ट्रल बॉडी' में विस्तारपूर्वक की है।

मान्य किया जाए या न किया जाए इससे क्या होता है ? सचाई तो सचाई है और जब वह सामने आती है तो भौतिक दृष्टि से सोचने वाले हक्के-बक्के रह जाते हैं और आत्मा के अस्तित्व को, चेतना की शक्ति को न समझने के कारण हतप्रभ हो उठते हैं। घटना ७ नवंबर, १९१८ की है। तब पहला विश्व युद्ध चल रहा था। एक फ्रांसीसी लड़का टैड, जिसका पिता फ्रांस के मोर्चे पर लड़ रहा था, खेलते-खेलते एकदम चिल्लाया—मेरे पिता का दम घुट रहा है। वे एक तंग कोठरी में बंद हो गये हैं और उन्हें कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा है। घर के लोग कुछ भी नहीं समझ पाये। टैड इतना कहकर बेहोश हो गया था। कुछ देर बेहोश रहने के बाद उसे होश आया और वह बोला—अब वे ठीक हो जायेंगे। घर के लोगों ने टैड के बेहोश होने से पूर्व कहे गये शब्दों और बाद में होश आने पर कहे शब्दों से इतना ही अंदाज लगाया कि टैड ने अपने पिता के संबंध में कोई दुःस्वप्न देखा होगा। बात जहाँ की तहाँ समाप्त हो गई।

प्रथम विश्वयुद्ध, जब समाप्त हुआ और टैड के पिता घर लौटे तो स्वजनों को उस दिन की घटना याद आ गयी, जब टैड के पिता ने बताया कि ७ नवंबर को मैं मरते-मरते बचा। पूछा गया कि क्या बात हुई थी तो उन्होंने बताया कि मैं उस दिन एक गैस चैंबर में फँस गया था, जिसमें मेरा दम घुटने लगा था। मुझे दिखायी देना भी बंद हो गया था। तभी मैंने देखा कि टैड जैसा एक लड़का उस युद्ध की विभीषिका में न जाने कहाँ से आ पहुँचा और उसने चैंबर का मुँह खोलकर, मुझे हाथ पकड़कर बाहर खींचा। तभी मेरी यूनिट के सैनिकों की दृष्टि मुझ पर पड़ी और उन्होंने मुझे अस्पताल पहुँचाया। यह विवरण सुनकर ही घर वालों

को उस दिन टैड के चीखने, बेहोश होने तथा होश में आने पर आश्वस्त ढंग से बात करने की घटना याद आयी।

इटली के एक पादरी अलफोन्सेस लिगाडरी के साथ २१ सितंबर, १६७४ को ऐसी ही घटना घटी। उस दिन वे ऐसी गहरी नींद में सोये कि जगाने की बहुत कोशिशें करने के बाद भी न जगाये जा सके। यह भ्रम हुआ कि कहीं वे मर तो नहीं गये हैं। इस भ्रम की परीक्षा के लिए उनकी जाँच की गयी तो पता चला कि वे पूरी तरह जीवित हैं। कई घंटों तक वे इसी स्थिति में रहे। उन्हें जब होश आया तो देखा कि आसपास लगभग सभी साथी सहयोगी खड़े हुए हैं। उन्होंने अपने साथियों से कहा—"मैं आपको एक बहुत ही दुःखद समाचार सुना रहा हूँ कि हमारे पूजनीय पोप का अभी-अभी देहांत हो गया है।" साथियों ने कहा—"आप तो कई घंटों से अचेत हैं, आपको कैसे यह मालूम हुआ ?"

लिगाडरी ने कहा—मैं इस देह को छोड़कर रोम गया हुआ था और अभी-अभी वहाँ से ही लौटा हूँ। उनके साथियों ने समझा कि वे कोई सपना देखकर उठे हैं और सपने में ही उन्होंने पोप की मृत्यु देखी होगी। चार दिन बाद ही यह खबर लगी कि पोप का देहांत हो गया है और वह उसी समय हुआ जबकि लिगाडरी अचेत थे तो उनके मित्र-साथी चकित रह गये।

एक स्थान पर रहते हुए भी मनुष्य अपनी आत्मा की शक्ति द्वारा दूरवर्ती क्षेत्रों में संदेश पहुँचा सकता है। उपरोक्त घटनाओं में जाने-अनजाने सूक्ष्म शरीर ही सक्रिय रहा है। यदि सूक्ष्म शरीर की शक्ति को जाग्रत् कर लिया जाय तो उससे जब चाहे तब मन चाहे करतब किये जा सकते हैं। १६२६ में अल्जीरिया में कैप्टन दुबो के साथ ऐसी ही घटना घटी, जिससे सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व और उसकी शक्तिमत्ता का प्रमाण मिलता है। कैप्टन दुबो जब अल्जीरिया के एक छोटे-से गाँव से कुछ रोगियों को देखकर लौट

रहे थे, गाँव का मुखिया अब्दुल उन्हें धन्यवाद देने के लिए उनके साथ-साथ आया, बातों ही बातों में अब्दुल ने कैप्टन से सूक्ष्म शरीर के अनेक चमत्कारों का उल्लेख कर दिया। दुबो ने अब्दुल की बातों में कोई रुचि नहीं दिखाई और उल्टे इसे गप्पबाजी कहा। इस पर अब्दुल ने कहा कि मैं इसे प्रमाणित कर सकता हूँ। कैप्टन ने जब उसकी यह बात सुनकर भी अविश्वास से सिर हिलाया तो अब्दुल कुछ देर के लिए ध्यानस्थ हुआ और फिर आँखें खोलकर बोला—आप अपने पीछे मुड़कर देखिए। जैसे ही उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो उन्होंने दीवार पर एक ऐसी कलाकृति टंगी पायी, जो उन्हें बहुत प्रिय थी और इस समय वहाँ से हजारों मील दूर पेरिस में उनके घर पर थी।

उसी दिन कैप्टन दुबो के पिता पियरे ने पेरिस के पुलिस विभाग में रिपोर्ट लिखाई कि उनके घर से १० लाख रुपये मूल्य की एक अद्वितीय कलाकृति चोरी चली गयी। पुलिस कमिश्नर पियरे के अच्छे मित्र थे। उन्होंने शिकायत मिलते ही अपने सर्वश्रेष्ठ गुप्तचर कलाकृति की खोज में लगा दिये। कई दिन तक लगातार खोज चली, पर कलाकृति की खोज न की जा सकी। जिस कमरे में कलाकृति टंगी थी, उसमें किसी के जबरन प्रवेश करने या उँगलियों के निशान नहीं मिले थे। पियरे ने इस कलाकृति की चोरी की खबर अपने पुत्र को भी दी। तब सारी बात जानकर कैप्टन दुबो, पुलिस कमिश्नर और अन्य अधिकारियों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ।

इन घटनाओं के कारण जो अनेक देशों एवं अनेक लोगों के साथ घटी हैं, वैज्ञानिकों का ध्यान भी इस ओर जाने लगा है। विज्ञान भी यह सोचने के लिए विवश हुआ है कि क्या स्थूल शरीर से परे भी मनुष्य का कोई अस्तित्व है, जो उसके संदेशों को सुदूर क्षेत्रों में पहुँचाता है तथा ऐसे-ऐसे काम कर डालता है, जो शरीर

द्वारा ही किये जा सकते हैं। बिना किसी स्थूल माध्यम के एक मनुष्य के विचारों और संदेशों को पहुँचाने की इस प्रक्रिया का नाम है, परामानसिक संचार (टेलीपैथी)। रूस के लेनिनग्राड विश्वविद्यालय में फिजियोलॉजी विभाग के अध्यक्ष प्रो० लियोनिद वासिलयेव ने अभी कुछ समय पूर्व एक अनूठा प्रयोग किया है। स्मरणीय रहे कि तात्कालिक रूस का शासनतंत्र धर्म, ईश्वर और आत्मतत्त्व की मान्यता को न केवल अनावश्यक मानता रहा है वरन् उसे अफीम भी बताता रहा है। फिर भी इस तरह की घटनाओं के कारण वास्तविकता की ओर उनका ध्यान गये बिना नहीं रहा। प्रो० वासिलयेव ने टेलीपैथी द्वारा कई मील दूर स्थित एक प्रयोगशाला में कार्यरत अनुसंधानकर्ताओं को सम्मोहित कर दिया और वे लोग जो प्रयोग कर रहे थे, उनसे वह प्रयोग छुड़वाकर किसी दूसरे प्रयोग में लगा दिया। अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिक अनजाने ही परवश से होकर वासिलयेव के संदेशों का पालन करने लगे और उन्हें यह भान तक नहीं हुआ कि वे क्या कर रहे हैं ? इस प्रयोग के द्वारा प्रो० वासिलयेव इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को केवल अपने संकल्पों के द्वारा भी प्रभावित कर सकता है और उसे अपना आज्ञानुवर्ती बना लेता है। इसके लिए न किसी भौतिक माध्यम की आवश्यकता होती है तथा न ही किसी और साधन की। यहाँ तक कि स्थान की दूरी भी इस प्रक्रिया में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करती।

भारतवर्ष में स्वामी विशुद्धानंद तथा स्वामी निगमानंद जी भी अपनी ऐसी अनुभूतियों को प्रमाणित कर चुके हैं। कहा जाता है कि तैलंग स्वामी को नंगे फिरने के अपराध में काशी के एक अंग्रेज अधिकारी ने जेल में बंद करा दिया। दूसरे दिन वे जेल से बाहर टहलते हुए पाये गये। नाथ संप्रदाय के महींद्रनाथ, गोरखनाथ,

जालंधरनाथ, कणप्पा आदि के बारे में भी ऐसे ही वर्णनों का उल्लेख है।

आत्मा के अस्तित्व और शरीर न रहने पर भी उसका अस्तित्व बने रहने के बारे में पाश्चात्य दार्शनिकों और तत्त्ववेत्ताओं में से जिनने इस संबंध में अधिक स्पष्ट समर्थन किया है, उनमें राल्फ वॉल्डो, ट्राइन सिडनी, फ्लोवर, एलाव्हीलर, बिलकाक्स, विलयम वॉकर, एटकिंसन, जेम्स, केनी आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। पुराने दार्शनिकों में से कार्लाइल, इमर्सन, कांट, हेगल, थॉमस, हिलमीन डायसन आदि का मत भी इसी प्रकार का था।

जो कार्य हम स्थूल जीवन में करते हैं या मस्तिष्क में जैसे विचार भरे रहते हैं, उनकी छाप सूक्ष्म शरीर पर पड़ती रहती है और वह छाप ही संस्कार बन जाती है। मनुष्य का चिंतन और कर्म जिस दिशा में चलता रहता है, कालांतर में वही स्वभाव बन जाता है और बहुत समय तक जिस स्वभाव को अभ्यास में लाया जाता रहता है, उसी तरह के संस्कार बन जाते हैं। यह संस्कार ही परिपक्व होकर शुभ-अशुभ प्रारब्ध एवं कर्मफल का रूप धारण करते रहते हैं। इस प्रकार कर्मफल प्रदान करने की स्व-संचालित प्रक्रिया भी इसी सूक्ष्म शरीर से संपन्न होती रहती है।

जोहान्सबर्ग (अफ्रीका) का एक गड़ेरिया बकरिया चराकर लौट रहा था। उसने एक झाड़ी के पास खों-खों करती बबून-बंदरिया देखी। लगता था वह बच्ची अपने माँ-बाप से बिछुड़ गई है। गड़ेरिया उसे अपने साथ ले आया और जोहान्सबर्ग के एक औद्योगिक फार्म के मालिक को उपहार में दे दिया।

सामान्यतः सृष्टि का विज्ञान सम्मत नियम यह है कि कोई भी जीव अपने माता-पिता के गुणसूत्रों (क्रोमोसोम्स) से प्रभावित होता है। शरीर के आकार-प्रकार से लेकर आहार-विहार और रहन-सहन

की सारी क्रियाएँ मनुष्य ही नहीं, जीव-जंतुओं में भी पैतृक होती हैं। इस नियम में थोड़ा बहुत अंतर तो उपेक्षणीय हो सकता है, पर असाधारण अपवाद उपेक्षणीय नहीं हो सकते। जो संस्कार सैकड़ों पीढ़ी पूर्व में भी संभव न हों, ऐसे संस्कार और जीव-जंतुओं के विलक्षण कारनामे भारतीय दर्शन के पुनर्जन्म और जीव द्वारा कर्मवश चौरासी लाख योनियों में भ्रमण के सिद्धांत को ही पुष्ट करते हैं।

अफ्रीका की जिस बबून बंदरिया की घटना प्रस्तुत की जा रही है, उसमें असाधारण मानवीय गुणों का उभार उस औद्योगिक फार्म में पहुँचते ही उसकी आयु के विकास के साथ प्रारंभ हो गया। उसे किसी से कोई प्रशिक्षण नहीं मिला, फिर उसमें उस विलक्षण प्रतिभा का जागरण कहाँ से हुआ, जिसके कारण वह इस परिवार की अंतरंग सदस्या बन गई ? आज के विचारशील मनुष्य के सामने यह एक जटिल और सुलझाने के लिए बहुत आवश्यक प्रश्न है।

बंदरिया का नाम आहला रखा गया। फार्म के मालिक एस्टन को पशुओं से बड़ा लगाव था। उनकी उपयोगिता समझने के कारण ही उन्होंने फार्म के भीतर ही एक पशुशाला भी स्थापित की थी। उसमें गायें, बछड़े, बछड़ियाँ, कुत्ते, बकरियाँ आदि दूध देने वाले पशु भी पाले थे। उनसे उनकी अच्छी आय भी होती थी और बचे समय के उपयोग का साधन भी। पशुओं को चराने और उनकी देख-रेख के लिए एक नौकर रखा गया था। यह बंदरिया भी उसे ही देख-रेख के लिए दे दी गई।

नौकर उसे साथ लेकर गौ चारण के लिए जाता था, धीरे-धीरे उसको अभ्यास हो गया। एक दिन किसी कारण से अपने गाँव चला गया। उस दिन बिना किसी से कुछ कहे ठीक समय पर बंदरिया भेड़-बकरियों को बाड़े से बाहर निकाल ले गई और दोनों

कुत्तों की सहायता से उन्हें दिन भर चराती रही। उसने चरवाहे का नहीं, कुशल चरवाहे का काम किया। भटके हुए मेमनों को उनके माता-पिता तथा बगल में दाबकर पहुँचाकर, जिनके पेट आधे भरे रह गये, उन्हें हरी घास वाले भू-भाग की ओर घेरकर पहुँचाकर उसने अपनी कुशलता का परिचय दिया। शाम को कुछ ऐसा हुआ कि एक बकरी का एक बच्चा अपनी माँ के पास जाकर, स्तनों में लगकर दूध पीने लगा, दूसरा कहीं खेल रहा था। आहला ने देखा कि वह अकेला ही सारा दूध चट किये दे रहा है, उसने उसे पकड़कर वहाँ से अलग किया। दूसरे बच्चे को भी लाई, तब फिर दोनों को एक-एक स्तन से लगाकर दूध पिलाया। मालिक यह देखकर बड़ा खुश हुआ। उसने चरवाहे को दूसरा काम दे दिया, तब से आहला लगातार १६ वर्ष तक चरवाहे का काम करती रही। इस अवधि में उसने पशुओं की सुरक्षा, स्वास्थ्य, रख-रखाव में ऐसे परिवर्तन और नया प्रबंध किया था, जिन्हें देखकर लगता मानो वह पूर्वजन्म में कोई गड़ेरिया रही हो और उसने भेड़-बकरियाँ चराने से लेकर उनकी व्यवस्था तक का सारा काम स्वयं किया हो।

वह शिकारी जंतुओं से मेमनों की रक्षा करती थी। शाम को हर एक पशु की गणना करती थी। कोई पशु बिछुड़ गया हो, कोई मेमना कहीं पीछे रह गया हो तो वह स्वयं जाकर उसे ढूँढ़कर लाती थी। फुरसत के समय उनके शरीर के जुएँ मारने से लेकर छोटे-छोटे मेमनों के साथ क्रीड़ा करने की सारी देख-रेख आहला स्वयं करती थी। उसे देखकर जोहान्सबर्ग के बड़े-बड़े वकील और डॉक्टर भी कहते थे—इस बंदरिया के शरीर में यह कोई मनुष्य आत्मा है। कदाचित् उन्हें पता होता कि जीवनी शक्ति के रूप में आत्मा एक है, दो नहीं; वह शक्ति इच्छा रूप में इधर-उधर विचरण करती और कभी मनुष्य तो कभी पशु-पक्षी और अन्य जीव के रूप में जन्म लेती रहती है।

योग वासिष्ठ में इस तथ्य को बड़ी सरलता से प्रतिपादित किया गया है। लिखा है—

ऐहिकं प्राक्तनं वापि कर्म यद्वचितं स्फुरत्।
पौरुषोऽसौ परो यत्नो न कदाचन निष्फलः।।

—३।९५।३४

अर्थात् पूर्वजन्म और इस जन्म में किये कर्म, फल—रूप में अवश्य प्रकट होते हैं। मनुष्य का किया हुआ यत्न फल लाये बिना नहीं रहता है।

कर्म की प्रेरणा मन की इच्छा और आवेगों से होती है, इसलिए इच्छाओं को ही कर्मफल का रूप देते हुए शास्त्रकार ने आगे लिखा है—

कर्म बीजं मनः स्पन्दः कथ्यतेऽथानुभूयते।
क्रियास्तु विविधास्तस्य शाखाश्चित्रफलास्तरोः।।

—योग वसिष्ठ ३।९६।११

अर्थात् मन का स्पंदन ही कर्मों का बीज है, कर्म और अनुभव में भी यही आता है। विविध क्रियाएँ ही तरह-तरह के फल लाती हैं।

नये शरीर में आने के पश्चात् अपने पूर्व अनुभवों का विवरण लिखते हुए एक जाग्रत् आत्मा की अनुभूति का वर्णन वेद में इस प्रकार आता है—

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन्
पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्।
वैश्वानरोदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नःपातुदुरितादवद्यात्।।

—यजुर्वेद ४।१५

अर्थात्—शरीर में जो प्राण शक्ति (आग्नेय-परमाणुओं के रूप में) काम कर रही थी, मैंने जाना नहीं कि मेरे संस्कार उसमें किस प्रकार अंकित होते रहे ? मृत्यु के समय मेरी पूर्व जन्म की इच्छाएँ,

सोने के समय मन आदि सब इंद्रियों के विलीन हो जाने की तरह मेरे प्राण में विलीन हो गई थीं, वह मेरे प्राणों का (इस दूसरे शरीर में) पुनर्जागरण होने पर ऐसे जाग्रत् हो गयी हैं। जैसे सोने के बाद जागने पर मनुष्य सोने के पहले के संकल्प-विकल्प के आधार पर काम प्रारंभ कर देता है। अब मैं पुनः आँख, कान आदि इंद्रियों को प्राप्त कर जाग्रत् हुआ हूँ और अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भुगतने को बाध्य हुआ हूँ।

इस कथन से आधुनिक विज्ञान का "जीन्स-सिद्धांत" पूरी तरह मेल खाता है। कोश के आग्नेय या प्रकाश भाग को ही प्राण कह सकते हैं। पैतृक या पूर्व जन्मों के संस्कार इन्हीं में होते हैं। यदि प्राणों की सत्ता को शरीर से अलग रखकर उसके अध्ययन की क्षमता विज्ञान ने प्राप्त कर ली तो पुनर्जन्म और विभिन्न योनियों में भ्रमण का रहस्य भी वैज्ञानिक आसानी से जान लेंगे।

तथापि तब तक यह उदाहरण भी इस परिकल्पना की पुष्टि में कम सहायक नहीं। आहला बंदरिया उसका एक उदाहरण है। बंदरों में मनुष्य से मिलती-जुलती बौद्धिक क्षमता तो होती है, पर इतनी कुशलता और सूक्ष्म विवेचन की क्षमता उनमें नहीं होती। यह संस्कार पूर्व जन्मों के ही हो सकते हैं। आहला की यह घटना दैनिक हिंदुस्तान और दुनिया के अन्य प्रमुख अखबारों में भी छप चुकी है। दिलचस्प बात तो यह है कि आहला एक बार कुछ दिन के लिए कहीं गायब हो गई। फिर अपने आप आ गई। इसके कुछ दिन पीछे उसके बच्चा हुआ। बच्चे के प्रति उसका मोह असाधारण मानवीय जैसा था। दैवयोग से बच्चा मर गया, पर आहला उसे तब तक छाती से लगाये रही, जब तक वह सूखकर अपने आप ही टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गया। कुछ दिनों पश्चात् वह पुनः गर्भवती हुई और उसकी खोई हुई प्रसन्नता फिर से वापस लौट आई।

बंदरिया ही क्यों, अपने असाधारण कारनामों के लिए कैरेकस का एक तोता भी पिछले ही वर्षों विश्व विख्यात हो चुका है। इस तोते के बारे में लोगों का कहना है कि उसमें किसी कम्युनिस्ट नेता के गुण विद्यमान थे। तोते को तोड़-फोड़ की कार्यवाही में सहयोग देने के अपराध में कैरेकस से २८७ मील दूर फाल्कन राज्य के सैन फ्रांसिस्को स्थान पर कैदी बनाया गया था।

यह तोता क्यूबा के "फिदैल कास्त्रो" विचारधारा के साम्यवादी गुरिल्लों को "हुर्रा" कहकर उत्साहित किया करता और उनका क्यूबाई भाषा से मिलते-जुलते उच्चारण और ध्वनि में मार्गदर्शन किया करता। गुरिल्ले उसके संकेत बहुत स्पष्ट समझने लगे थे, उन्हें इस तोते से बड़ी मदद मिलती थी। उन्होंने इसका नाम "चुचो" रखा था। बाद में इस तोते की जीभ साफ की जाती रही और उसे नई विचारधारा में ढालने का प्रयास किया जा रहा था, किंतु उसके संस्कारों में साम्यवाद की जड़ें इतनी गहरी जम गई थीं, मानो उसने साम्यवाद साहित्य का वर्षों अध्ययन और मनन किया हो। तोते की यह असाधारण क्षमता इस बात का संकेत है कि अच्छे या बुरे कोई भी कर्म अपने सूक्ष्म संस्कारों के रूप में जीव का कभी भी पीछा नहीं छोड़ते, चाहे वह बंदर हो या तोता।

यह दो उदाहरण व्यक्तिगत हैं, एक और उदाहरण ऐसा है जो यह बताता है कि व्यक्ति ही नहीं, यदि—सामाजिक परंपराएँ विकृत हो जायें और किसी समाज के अधिकांश लोग एक से विचार के अभ्यस्त हो जायें, तो उन्हें उन कर्मों का फल सामूहिक रूप से भोगना पड़ता है। सन् १६१० के लगभग की बात है। दक्षिण-पश्चिमी अमेरिका सामाजिक अपराधों का गढ़ हो चुका था। मांसाहारी होने के कारण वहाँ के लोग उग्र स्वभाव के तो होते ही हैं। हत्या, डकैतियों की संख्या दिनों दिन बढ़ रही थी। ऐसे कई कुख्यात अपराधी मर भी चुके थे। उन्हीं दिनों वहाँ पाई जाने वाली

भेड़ियों की "लोबो" जाति में कई ऐसे खूँखार भेड़िये पैदा हुए, जिनके आगे लोग हत्या और लूट-पाट करने वालों का भी भय भूल गये।

कोलोरेडो का एक भेड़िया इतना दुष्ट निकला कि उसने अपने थोड़े-से ही जीवन काल में इतने पशु मारे, कि उनकी क्षति का यथार्थ अनुमान लगाने के लिए सरकारी सर्वेक्षण किया गया और यह पाया गया कि इस एक भेड़िये ने १००००० डालर के मूल्य के पशुओं को केवल शौक-शौक में मार डाला। इसे लोग "कोलोरेडो का कसाई" कहते थे और उसके असाधारण बुद्धि कौशल को देखकर मानते थे कि ऐसी चतुरता तो मनुष्यों में ही हो सकती है। प्रश्न यह है कि क्या वह कोई खूँखार मनुष्य ही था जिसने कर्मफल या पूर्व जन्मों के संस्कारों के कारण भेड़िये के रूप में जन्म लिया ?

१६५५ में ऐसे भेड़ियों का आतंक छा गया और तब सरकार को उन्हें मरवाने के लिए काफी धन भी खर्च करना पड़ा। "जैक द रिपर" भेड़िये को सरकार ने इनाम देकर मरवाया। एक तीन टाँग का भेड़िया, जिसने केवल अपना शौक अदा करने के लिए लगभग एक हजार पशुओं का वध किया, वह भी ऐसे ही मारा गया। इसकी बुद्धि मनुष्यों से कम नहीं थी। धोखा देने, संगठित रूप से आक्रमण करने, चकमा देने में वह आश्चर्यजनक चतुरता बरतता। एक बार टेडी रूजवेल्ट नामक एक व्यक्ति ने अपने नौ शिकारी कुत्तों के साथ इस कसाई का पीछा किया। भेड़िया भागता ही गया रुका नहीं, रात होने को आई कुत्ते रोक लिये गये। बस भेड़िया भी वहीं रुक गया। रात को कैंप लगाकर टेडी रुक गया और उस कैंप में घुसकर एक-एक करके भेड़िये ने नौओं कुत्तों को मार दिया और किसी को पता भी नहीं चल सका।

बंदरिया से लेकर तोते और भेड़िये तक के यह असाधारण संस्कार प्रश्न चिह्न हैं और वे यह बात सोचने के लिए विवश करते हैं कि क्या सचमुच ही कर्मफल जैसी कोई ईश्वरीय व्यवस्था भी है, जो जीवात्मा की इच्छा-शक्ति को सैकड़ों योनियों में भ्रमण कराती रहती है ?

'दि ह्यूमन परसनैलिटी एंड इट्स सरवाइवल ऑफ बॉडीली डेथ' के लेखक सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक श्री एफ० डब्ल्यू० एच० मेयर्स ने एक ऐसी ही घटना दी है—यह घटना अमरीका के वर्जीनिया प्रांत में प्रकाशित होने वाली 'मेडिको लीगल' पत्रिका के जून १८९६ अंक में छपी थी और श्री ड्यूरी उसके लेखक थे। घटना इस प्रकार है—

"एक हृष्ट-पुष्ट व्यापारी जिसकी आयु लगभग ५० वर्ष रही होगी, व्यापार के लिए सामान लेने की दृष्टि से एक-दूसरे शहर गया। उसे श्री के० कहते थे। वह बड़ा ही नेक, ईमानदार, सच्चरित्र और शांति प्रिय था। काफी दिन शहर में रहकर उसने तिजारत की, मित्रों से मिला और सामान इकट्ठा किया। अंत में सामान जहाज की एक कोठरी में बंद कराया। टिकट भी बुक करा ली, किंतु जब जहाज चलने लगा तो बहुत खोज-बीन करने पर भी उस व्यापारी का कोई पता न चला।"

"६ माह बाद वह घर आया तो अत्यंत दुर्बल और अशांत-सा हो गया था। वस्त्र वही पहले वाले थे। जेब में जहाज की कोठरी की चाभी भी पड़ी थी। जब उसे होश आया तो उसने अपने आपको एक फलों वाली गाड़ी हाँकते हुए पाया। उसे यह जरा भी याद न था कि वह वहाँ कब, क्यों और कैसे आया ? उसे जहाज के कमरे में प्रवेश तक का स्मरण था। उसके बाद ६ माह तक उसने क्या किया, कहाँ रहा, इसका उसे कुछ भी याद नहीं रहा।"

इसी पुस्तक के पैरा २२५ में मेयर्स ने एक घटना दी है—एल्या जेड नाम की कन्या बड़ी सुशील और बुद्धिमान् थी। काफी परिश्रम करने के कारण उसका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया। इस अवस्था में २ वर्ष रहने के बाद एकाएक बालिका का व्यक्तित्व बदल गया। उसने कहा—"मेरा नाम 'टुआई' है। वह अमेरिका के आदिवासियों की भाषा बोलने लगी, जिसका पहले उसे जरा भी ज्ञान नहीं था। इस अवस्था में उसकी फुर्ती-प्रसन्नता देखते बनती थी। वह अनोखी और मनोरंजक बातें करती थी, जब उस शरीर में फिर एल्या जेड आ जाती थी तो वही पहले की-सी रुग्ण हो जाती थी।"

यह दो उदाहरण लिखने के बाद मेयर्स ने लिखा है "भौतिक मस्तिष्क से एक ही परिस्थिति में दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ?" शरीर की बनावट में कोई अंतर आये बिना स्मृति का बदल जाना और कोई नया व्यक्तित्व व्यक्त होना आत्मा के अस्तित्व का ही प्रमाण है। यह अनुसंधान बताते हैं कि मनुष्य में आत्मा है और यह आत्मा मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहती है। यह बात चाहे साइंस पढ़े-लिखे हों, चाहे साइंस को मानने वाले हों स्वीकार किये बिना कल्याण नहीं है।

स्वप्न में विचार, ज्ञान और स्मृति भी आत्मा के अस्तित्व को ही प्रमाणित करते हैं। फ्रायड लिखते हैं कि स्वप्न 'इच्छा पूरक' होते हैं और भूतकालीन समस्याओं के लिए नाटक की तरह है अर्थात् मनुष्य दिन में जो कुछ सोचता और करता है, उनमें से कई बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें वह बहुत चाहता है, पर कर नहीं पाता। चूँकि वह उन पर विचार कर चुका होता है, इसलिए उस दमित विचार की फोटो अचेतन मस्तिष्क में जम जाती है और रात में जब मनुष्य सोता है, तब वही दृश्य उसे स्वप्न की तरह दिखाई देने लगते हैं।

आज स्वप्नों के बारे में लोगों की ऐसी ही या इसी से मिलती-जुलती मान्यताएँ हैं, पर आत्म-विज्ञान की दृष्टि में स्वप्न मनुष्य जीवन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। उसका संबंध भले ही अचेतन मन से हो, पर वह होता सनातन अर्थात् जब से जीव का प्रादुर्भाव हुआ है तब से और आगे होने वाली घटनाओं से भी संबंध रखता है। इसलिए स्वप्न को भी आत्मा के अस्तित्व के प्रमाण के रूप में लिया जा सकता है। ऐसे स्वप्न जो उपरोक्त घटना की तरह काफी समय बाद होने वाली घटनाओं का भी पूर्वाभास करा देते हैं, उसके प्रमाण माने जा सकते हैं।

ब्वायल शिमला में अफसर थे। उन्होंने एक रात स्वप्न में देखा कि उनके श्वसुर की मृत्यु इंग्लैंड के ब्राइटन नगर में अमुक मकान में इस समय हुई, जबकि कुछ दिन पूर्व ही उनके स्वास्थ्य की कुशल-मंगल आई थी, इसलिए उन्हें इस तरह की कोई आशंका या चिंता भी नहीं थी, किंतु बाद में उन्हें पत्र मिला जिसमें उनका स्वप्न बिल्कुल सत्य निकला।

भारतीय योगियों ने गहन योग साधनाओं के आधार पर इस विज्ञान के अनेक रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया है। यह योग साधनाएँ भले ही कठिन हों, सर्व सुलभ न हों, पर यह एक प्रकार की नितांत वैज्ञानिक प्रक्रिया है। साधना विधानों को अपनाकर आत्म सत्ता की अनुभूति सामने खड़े हुए पुरुष को देखने की तरह ही अत्यंत स्पष्ट रूप से की जा सकती है। इन अनुभूतियों के आधार पर ही हमारा उपनिषद्कार कहता है—

अंगुष्ठ मात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते, एतद्वै तत्।
अंगुष्ठ मात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उश्वः, एतद्वै तत्।

—कठोपनिषद् द्वितीय अध्याय प्रथमा वल्ली, १२।१३

अर्थात्—यह आत्मा ही वह परमेश्वर है, जिसे जान लेने पर मनुष्य किसी की निंदा नहीं करता। वह परम पुरुष अंगुष्ठ मात्र देह गह्वर में स्थित होकर भूत, भविष्यत् आदि कालों में सब पर शासन करता है। यही वह परमेश्वर है, जो आज भी है, कल भी रहेगा। वह अंगुष्ठ प्रमाण परिमाण वाला पुरुष निर्धूम ज्योति (अत्यंत उज्ज्वल प्रकाश) के समान है एवं भूत, भविष्यत् सब कालों पर शासन करता है।

यदि ऐसी विराट् शक्ति देह में स्थित है तो उसकी अनुभूति क्यों नहीं होती ? उसका कारण इसी उपनिषद् के प्रथम अध्याय की तीसरी वल्ली में इस प्रकार बताया है—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रययाबुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।

—तीसरी कठोपनिषद् वल्ली, १२

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति सैं सारं चाधिगच्छति।।

—तीसरी कठोपनिषद् वल्ली, ७

अर्थात्—परमात्मा सभी में आत्मा के रूप में देहधारियों में निवास करता हुआ अपनी माया से आच्छादित रहने के कारण प्रकट नहीं होता। केवल सूक्ष्मदर्शियों को ही सूक्ष्म बुद्धि द्वारा दर्शन देता है। अविवेकी बुद्धि और असंयत मन वाला अपवित्र हृदय मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमता रहता है और परमपद को कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

❐ ❐

अपने को जानें, भव-बंधनों से छूटें

★ ★

संसार में जानने को बहुत कुछ है, पर सबसे महत्त्वपूर्ण जानकारी अपने आप के संबंध की है। उसे जान लेने पर बाकी जानकारियाँ प्राप्त करना सरल हो जाता है। ज्ञान का आरंभ आत्म ज्ञान से होता है, जो अपने को नहीं जानता वह दूसरों को क्या जानेगा ?

आत्मज्ञान जहाँ कठिन है वहाँ सरल भी बहुत है। दूसरी वस्तुएँ दूर भी हैं और उनका सीधा संबंध भी अपने से नहीं है। किसी के द्वारा ही संसार में बिखरा हुआ ज्ञान पाया और जाना जा सकता है। पर अपना-आपा सबसे निकट है, हम उसके अधिपति हैं—आदि से अंत तक उसमें समाये हुए हैं, इस दृष्टि से आत्मज्ञान सबसे सरल भी है। शोध करने योग्य एक ही तथ्य है—आविष्कृत किये जाने योग्य एक ही चमत्कार है—वह है अपना—आपा। जिसे पाने के बाद और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

बाहर की चीजों को ढूँढ़ने में मन इसलिए लगा रहता है कि अपने को ढूँढ़ने के झंझट से बचा जा सके, क्योंकि जिस स्थिति में आज हम हैं उसमें अँधेरा दीखता है और अकेलापन। यह डरावनी स्थिति है। सुनसान को कौन पसंद करता है ? खालीपन किसे भाता है ? अपने को इस विपन्न स्थिति में डालकर स्वयं ही अपने को डरावना बना लिया है और उससे भयभीत होकर स्वयं ही भागते हैं। अपने को देखने, खोजने और समझने की इच्छा इसी से नहीं होती और मन बहलाने के लिए बाहर की चीजों को ढूँढ़ते-फिरते हैं; कैसी है यह विडंबना ?

क्या वस्तुतः भीतर अँधेरा है ? क्या वस्तुतः हम अकेले और सूने हैं ? नहीं, प्रकाश का ज्योति-पुंज अपने भीतर विद्यमान है और

एक पूरा संसार ही अपने भीतर विराजमान है। उसे पाने और देखने के लिए आवश्यक है कि मुँह अपनी ओर हो। पीठ फेर लेने से तो सूर्य भी दिखाई नहीं पड़ता और हिमालय तथा समुद्र भी दीखना बंद हो जाता है। फिर अपनी ओर पीठ करके खड़े हो जायें तो शून्य के अतिरिक्त और दीखेगा भी क्या ?

बाहर केवल जड़ जगत् है। पंच भूतों की बनी हुई निर्जीव बहिरंग दृष्टि लेकर तो हम मात्र जड़ता ही देख सकेंगे। अपना जो स्वरूप आँखों से दीखता है, कानों से सुनाई पड़ता है, जड़ है। ईश्वर को भी यदि बाहर देखा जायेगा तो उसके रूप में जड़ता या माया ही दृष्टिगोचर होगी। अंदर जो है वही सत है। इसे अंतर्मुखी होकर देखना पड़ता है। आत्मा और उसके साथ जुड़े हुए परमात्मा को देखने के लिए अंतःदृष्टि की आवश्यकता है। इस प्रयास में अंतर्मुखी हुए बिना काम नहीं चलता।

स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, शांति आदि विभूतियों की खोज में कहीं अन्यत्र जाने की जरूरत नहीं है। बाहर भरी हुई जड़ता में चेतना कैसे पाई जा सकेगी ? जिसे ढूँढ़ने की प्यास और पाने की चाह है वह तो भीतर ही भरा पड़ा है। जिसे कुछ मिला है यहीं से मिला है। कस्तूरी वाला हिरन तब तक उद्विग्न और अतृप्त ही फिरता रहेगा, जब तक कि अपने ही नाभि केंद्र में कस्तूरी की सुगंध सन्निहित होने पर विश्वास न करेगा। बाहर जो कुछ भी चमक रहा है, सब अपनी आँखों का प्रकाश प्रतिबिंब मात्र है।

श्रुति कहती है—अपने आपको जानो, अपने को प्राप्त करो और अमृतत्व में लीन हो जाओ। उसी को ऋषियों ने दुहराया और तत्त्वज्ञानियों ने उसे ही सारी उपलब्धियों का सार कहा है, क्योंकि जो बाहर दीख रहा है वह भीतरी तत्त्व का ही विस्तार है। अपना आपा जिस स्तर का होता है, संसार का स्वरूप भी वैसा ही दीखता

है। बाहर हमें जैसा देखना पसंद हो उसे भीतर से खोज निकालें। यही अन्वेषण की चरम सीमा है।

दुःख, दारिद्रय, शोक, संताप और अभाव, उद्वेग का निवारण करने के लिए इन अनात्म तत्त्वों की अंतरंग में जमी हुई जड़ों को खोदना पड़ेगा। भीतर का दीपक जलने पर ही बाहर फैले हुए अंधकार का समाधान होगा। जो कुछ हमारें लिए अभीष्ट और आवश्यक है, उसकी समस्त संभावनाएँ अपने भीतर सुरक्षित रखी हुई हैं। आवश्यकता उन्हें प्रयोग करने की है। अपने आपे का प्रयोग करना यदि हमें आया होता तो हम ईश्वर सदृश बन सकने में समर्थ होते। अपने को खोकर हमने खोया ही खोया है। बाहर ढूँढ़ने में जीवन गँवा डाला, पर मिला कुछ नहीं; मिलता तब जब बाहर कुछ होता।

अनात्म तत्त्वों की जो गंदगी भीतर भर गई है, उसे निकाल दें तो शेष वही रह जाता है, जो हमारा स्वरूप है। कुछ पाने के लिए कुछ खोने के लिए तप साधन किये जाते हैं। आत्मा तो स्वयं उपलब्ध ही है। उसे पाने के लिए कुछ करना नहीं है। करने की बात इतनी ही है कि जो अनुपयुक्त और अवांछनीय अपने भीतर भर लिया है, उसे निकालकर फेंक दें। यह परिशोधन ही उपलब्धि का निमित्त बन जाता है।

किसी तत्त्ववेत्ता से जिज्ञासु ने पूछा—गुरुदेव, तप साधना से आपने क्या पाया ? उन्होंने उत्तर दिया—खोया बहुत, पाया कुछ नहीं। जिज्ञासु ने आश्चर्य से पूछा—ऐसा क्यों ? ज्ञानी ने कहा—जो पाने लायक था, वह तो पहले से ही प्राप्त था। जो खोने लायक विषय, विकार और अज्ञान अंधकार के अनात्म तत्त्व भीतर घुस पड़े थे, उन्हें साधना ने निकाला भर है। इस तरह साधक—साधना में खोता ही खोता है, पाता कुछ नहीं। हम स्वप्न खोते हैं, तब सत्य पाते हैं।

रोवर गोडल ने अपनी पुस्तक 'दी कंटेपरेरी साइंसेज एंड दी लिवरेटिव एक्सपीरियेंस ऑफ योग' में लिखा है—'मनुष्य के यह जानने से पहले कि वह वास्तव में क्या है, अब तक के जाने हुए को भूलना होगा। वर्तमान नकारात्मक मान्यताओं के कारण मानव अपने भीतर स्थूल अहंवाद के साथ जुड़ी हुई मिथ्या मान्यताओं से ही परिचित हो पाया है। आत्मिक प्रगति के लिए हमें आत्म-बोध का प्रशिक्षण आरंभ से ही करना होगा, क्योंकि उन तथ्यों को जिन पर आत्मोन्नति निर्भर है, एक प्रकार से हमने भुला ही दिया है।'

कार्लाइल ने कहा है—अपने को जानने का प्रयत्न करो। अपने स्वरूप को समझो और जिस लिए जन्मे हो उस पर विचार करो। तुम्हें दिशा मिलेगी और सही दिशा में कदम उठ गये तो वह प्राप्त करके रहोगे, जिसके पाये बिना अपूर्णता और अतृप्ति घेरे ही रहेगी।

स्वामी विवेकानंद ने एक कथा सुनाई—एक तत्त्व ज्ञानी अपनी पत्नी से कह रहे थे, संध्या आने वाली है, काम समेट लो। एक सिंह कुटी के पीछे यह सुन रहा था, उसने समझा संध्या कोई बड़ी शक्ति है, जिससे डरकर यह निर्भय रहने वाले ज्ञानी भी अपना सामान समेटने को विवश हुए हैं। सिंह चिंता में डूब गया और उसे संध्या का डर सताने लगा।

पास के घाट का धोबी दिन छिपने पर अपने कपड़े समेट कर गधे पर लादने की तैयारी करने लगा। देखा तो गधा गायब। उसे ढूँढ़ने में देर हो गई। रात घिर आई और पानी बरसने लगा। धोबी को एक झाड़ी में खड़खड़ाहट सुनाई दी, समझा गधा है। सो लाठी से उसे पीटने लगा—धूर्त यहाँ छिपकर बैठा है। सिंह की पीठ पर लाठियाँ पड़ीं तो उसने समझा यही संध्या है, सो डर से थर-थर काँपने लगा। धोबी उसे घसीट लाया और कपड़े लादकर घर चल दिया। रास्ते में एक दूसरा सिंह मिला। उसने अपने साथी

की दुर्गति देखी तो पूछा—यह क्या हुआ ? तुम इस प्रकार लदे क्यों फिर रहे हो ? सिंह ने कहा—"संध्या के चंगुल में फँस गये हैं, वह बुरी तरह पीटती है और इतना वजन लादती है।"

सिंह को कष्ट देने वाली संध्या नहीं उसकी भ्रांति थी, जिसके कारण धोबी को कोई बड़ा देव-दानव समझ लिया गया और उसका भार एवं प्रहार बिना सिर हिलाये स्वीकार कर लिया गया। हमारी यही स्थिति है। अपने वास्तविक स्वरूप को न समझने और संसार के साथ—जड़-पदार्थों के साथ अपने संबंधों का ठीक तरह ताल-मेल न मिला सकने की गड़बड़ी ने ही हमें उन विपन्न परिस्थितियों में धकेल दिया है, जिनमें अंधकार के अतिरिक्त और कुछ दीखता ही नहीं। इस भ्रांति को ही माया कहा गया है। माया को ही बंधन कहा गया है और दुःखों का कारण बताया गया है। यह माया और कुछ नहीं, वास्तविकता से अपरिचित रखने वाला अज्ञान ही है।

गीता में माया की व्याख्या और प्रतिक्रिया समझाते हुए भगवान् ने कहा है—

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जंतवः।

ज्ञान अज्ञान के द्वारा ढक दिया गया है, इस कारण सब प्राणी मोह को प्राप्त होते हैं।

नाह प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः।

—गीता ७.२५

अपनी योग माया से ढके हुए होने के कारण मैं सबके लिए दृश्य नहीं हूँ।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

—गीता ७.१४

तीन गुणों से युक्त इस मेरी माया को पार करना बड़ा कठिन है।

शरीर को आत्मा समझ बैठने—शरीर के सुख-दुःख, हानि-लाभ और संयोग-वियोग को आत्मा पर घटित हुई मान लेने से मनुष्य दुःखी होता है। उपलब्धियों की अपेक्षा यदि अपना ध्यान आत्मा के निर्मल-निर्विकार स्वरूप में बना रहे और जीविकोद्देश्य की पूर्ति के लिए कर्तव्य कर्मों को करते रहने एवं दिव्य विचारों में रमण करने की प्रवृत्ति अपना ली जाये तो न दुःख की गुंजायश रहे न शोक की। अपने को आत्मा बना इस संसार को परमेश्वर का स्वरूप मानकर परमात्मा के लिए आत्मा द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले अनुदानों—कर्तव्य कर्मों को अपनाते हुए जीवन यात्रा पूरी करने लगे तो सारे दुःख दूर हो जायें, जिन्हें अज्ञता के कारण मायाबद्ध जीव पग-पग पर भुगतता रहता है।

● आत्म-साधना के तीन चरण

मानवीय अस्तित्व को तीन भागों में बाँट सकते हैं—(१) स्थूल (२) सूक्ष्म (३) कारण। अध्यात्म शास्त्र में इन्हें ही मनुष्य के तीन शरीर कहा गया है। केले के तने की तरह अथवा प्याज की तरह परत-दर-परत उधेड़ते जाने पर हमें रक्त-मांस निर्मित स्थूल शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर और उसके भी भीतर कारण शरीर का बोध होता है, मानो शरीर के ऊपर क्रमशः बनियान, कुर्त्ता, जाकेट पहना रखी गई हों।

स्थूल शरीर माँ के पेट से प्रारंभ होकर श्मशान घाट में समाप्त हो जाता है। इहलौकिक क्रिया-कलापों का यही माध्यम है। खाने, सोने, चलने, रोटी कमाने, शुभ-अशुभ कर्म करने, इंद्रिय-सुख भोगने आदि के प्रयोजन इसी शरीर से पूरे होते हैं।

सूक्ष्म शरीर चिंतन-मनन, आकांक्षा, अभिरुचि आदि मानसिक गतिविधियों का केंद्र व माध्यम है। इसका प्रधान कार्यस्थल

मस्तिष्क ही है, यद्यपि सामान्यतः यह पूरे स्थूल शरीर में उसी तरह व्याप्त है, जैसे दूध में घी।

तीसरा कारण शरीर आत्मा के अति समीप है तथा उच्चस्तरीय दिव्य भावनाओं का आधार है। दया, प्रेम, कर्तव्यनिष्ठा, संयम, करुणा, सेवा, धर्म आदि कोमल संवेदनादिक उच्चभाव इसी में उठते रहते हैं। जो लोग क्रूरता और दुष्टता में ही परिपक्व हो जाते हैं, उनका कारण शरीर भी क्रूरचेष्टाओं हेतु सहमत हो जाता है।

साधना का अर्थ है इन तीनों ही शरीरों की समुचित साज-सम्हाल और उत्कर्ष की व्यवस्था। साधना की दिशा में प्राथमिक पग है—उपासना। भजन-पूजन, जप-ध्यान, व्रत-उपवास आदि उपासना-अभ्यास मन की प्रवृत्ति को पदार्थपरकता से चेतना की ओर मोड़ते हैं। विश्वव्यापी चेतना के स्मरण और सान्निध्य की अनुभूति की आकांक्षा जाग्रत् हो जाने पर मनोवृत्तियों का वासना और तृष्णा की दिशा में भटकाव, समय, शक्ति और पुरुषार्थ का भयानक दुरुपयोग प्रतीत होने लगता है। तब मनःशक्ति को संयमित कर परमार्थ में नियोजित करने की प्रवृत्ति दृढ़ होती जाती है। यही साधना है। उपासना दिन के एक छोटे-से अंश में, निश्चित समय तक की जाती है, साधना एक अविच्छिन्न प्रक्रिया है। वह पूरे जीवन का ही नाम है। साधनामय जीवन आंतरिक पवित्रता को निखारता जाता है और ईश्वरीय प्रकाश का दिव्य दर्शन कराता है। मानवीय व्यक्तित्व में देवत्व के अवतरण की यही प्रक्रिया है।

साधना के दो वर्ग हैं—(१) विशिष्ट लोगों की—विशिष्ट प्रयोजन हेतु विनिर्मित विशिष्ट प्रक्रिया। (२) सर्वसाधारण के लिए सहज, सुगम-सौम्य पद्धति।

विशिष्ट प्रक्रियाएँ असाधारण मनोबल-संपन्न, कठोर तपश्चर्या के लिए समुद्यत, सांसारिक उत्तरदायित्वों से निवृत्त लोगों—योगी-

यती, एकांतवासी लोगों के लिए है। हठयोग, षट्चक्र वेधन, कुंडलिनी जागरण, लययोग, ऋजुयोग, प्राणयोग आदि की साधनाएँ इसी वर्ग की हैं। पर यह मार्ग अत्यंत कठिन है। भूल होने पर इस राह में खतरे ही खतरे हैं। निश्चय ही इसमें ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती हैं। पर उन उपलब्धियों से चमत्कार-प्रदर्शन द्वारा लोगों को विस्मित-चकित कर देने की आकांक्षा मात्र अहंकार ही बढ़ाती हैं। सिद्धियों द्वारा किसी का तात्कालिक कष्ट निवारण भी संभव है और उसमें थोड़ा बहुत आत्मसंतोष भी प्राप्त हो जाता है, लेकिन यह मार्ग है जोखिम भरा ही।

चमत्कारों के लोभ से इस राह पर चल पड़ने वाले अधिकांश साधक साधना-पथ की कठिनाइयों और लंबाई से निराश होकर या तो विरत हो जाते हैं, या फिर अपनी असफलता की झेंप मिटाने के लिए धूर्तता के द्वारा लोगों को चमत्कृत करने का निकृष्ट व्यवसाय अपनाकर, स्वयं भी पतित होते और दूसरों को भी गड्ढे में धकेलते हैं। मात्र असामान्य साहसी व्यक्ति ही इस मार्ग में बढ़ सकते हैं, सो भी विशिष्ट परिस्थितियाँ बन पड़ें तभी।

सौम्य साधना पद्धति का राजमार्ग सर्वसाधारण के लिए सुगम है। आजीविका-उपार्जन तथा सामान्य गृहस्थ जीवन-यापन करते हुए इस साधना क्रम को अपनाया जा सकता है। इस पथ पर सहज ही गतिशील रहा जा सकता है। इसीलिए शास्त्रकारों और ऋषियों ने सर्वसाधारण को इसी पथ के अवलंबन हेतु प्रोत्साहित किया है। इस मार्ग द्वारा जादूगरी जैसे चमत्कार भले न प्राप्त हो, पर नर को नारायण की स्थिति तक पहुँचा देने का वास्तविक चमत्कार निश्चित ही संभव है।

इस सौम्य साधना पद्धति द्वारा स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरों का संस्कार-परिष्कार, परिमार्जन और परिवर्धन किया जाता है। इसके तीन प्रयोग हैं—(१) कर्मयोग, (२) ज्ञानयोग, (३) भक्तियोग। तीनों की

सुसंतुलित क्रियापद्धति का अवलंबन ही श्रेयस्कर है। श्रीमद्भगवद् गीता में इसी प्रक्रिया का विवेचन है। धर्मशास्त्र का विशालकाय कलेवर भी इसी त्रिविध तत्त्वज्ञान की विवेचना में ही खड़ा किया गया है। अपनी विचारपद्धति, कार्यपद्धति और भावस्थिति में यदि इन आस्थाओं का समुचित समावेश कर लिया जाये, तो हम अपनी असह्य यंत्रणा की वर्तमान मनोभूमि से मुक्त होकर इसी शरीर से अपने जीवन में देवत्व के अभ्युदय की अनुभूति कर सकते हैं। देश, काल, पात्र की स्थिति के अनुरूप साधनाओं के मूल उद्देश्य तथा निर्दिष्ट क्रिया पद्धति में सामयिक हेर-फेर किये जाते रहते हैं और किये जाने ही चाहिए। सृष्टि के आरंभ से आज तक समय-समय पर ऋषियों ने इसी त्रिविध साधना का—विभिन्न विधि-विधानों के रूप में, अपने समय के साधकों की मनोभूमि तथा सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मार्ग-निर्देश किया है। इस क्रिया-विधान में कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञान-योग तीनों का इस ढंग से समावेश किया गया है कि व्यक्तिगत के तीनों शरीर परिपुष्ट होते चलें और समाज में विकास के पुण्य-प्रयोजन का भी कार्य होता चले।

कर्मयोग की आधार-शिला है, प्रातःकाल आँख खुलते ही चारपाई पर पड़े-पड़े 'हर दिन नया जन्म, हर रात नई मौत' की विचारणा—प्रक्रिया को अपनाना तथा प्रस्तुत दिन के सर्वोत्तम सदुपयोग की तैयारी कर निश्चित कार्यक्रमों-गतिविधियों एवं विचार-प्रक्रिया का निर्धारण। संपूर्ण दिन मन में किस स्तर की भावनाएँ किस काम के साथ संयोजित की जायेगी, यह भी निश्चित कर लेना अनिवार्य है। दिन भर इसी निर्धारण का दृढ़ता से पालन सामान्य जीवन क्रम को ही कर्म-योग की साधना का फल प्रदान करेगा।

फिर रात्रि में शयन पूर्व बिस्तर पर पहुँचते ही दिन की गतिविधियों का लेखा-जोखा कर सफलताओं के लिए ईश्वर को धन्यवाद देना तथा भूलों के लिए सच्चे पश्चात्ताप के साथ क्षमा

प्रार्थना कर, पूर्ण निश्चिंतता के साथ, शांतिपूर्वक माता निद्रादेवी की गोद में सो जाना।

कर्मयोग की इस साधना के साथ ही ज्ञानयोग की साधना भी जुड़ी है। उस हेतु मन में उत्कृष्ट विचारों का अनवरत समावेश आवश्यक है। प्रेरक स्वाध्याय ही इसका मार्ग है। रूढ़िवादी रीति से किन्हीं पुरानी किस्से-कहानी जैसी किताबों का वासी रहना, घोटना स्वाध्याय नहीं। व्यावहारिक जीवन में आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता की दिशा दिखलाने वाला स्वाध्याय ही आवश्यक है और उसे दैनिक जीवन का एक नित्य कर्म मानकर किया ही जाना चाहिए। व्यक्ति एवं समाज के नव-निर्माण हेतु उपयोगी उत्कृष्ट साहित्य के दैनंदिन स्वाध्याय के लिए समय अनिवार्यतः निकालना ही चाहिए।

यह हुई ज्ञान-योग की निजी साधना। इसे ज्ञान-यज्ञ का रूप देना चाहिए। समाज में सद्विचारों का सर्वाधिक अभाव है। विश्वव्यापी शोक-संताप का यही कारण है। जन-मानस का स्तर परिवर्तित करने पर ही दुःख-दारिद्र्य की प्रचंड आग बुझेगी। विचारक्रांति आज की सर्वोपरि आवश्यकता है। ज्ञान-यज्ञ इसी आवश्यकता की पूर्ति करने वाला महान् अभियान है। एक घंटा समय और दस पैसा नित्य खर्च करना देखने में तो एक छोटा ही काम है, पर उसका सम्मिश्रित परिणाम अत्यधिक है, युग-परिवर्तन का वह एक सशक्त माध्यम है। साधक का आत्म-कल्याण एवं विश्व-कल्याण दोनों ही ज्ञान-यज्ञ द्वारा सहज संभव हैं।

भक्तियोग का अर्थ है, अंतरात्मा में दिव्यभावनाओं का अनवरत प्रवाह। पर ब्रह्म से अपने अनन्य प्रेम का स्मरण, तादात्म्य की प्रचंड अनुभूति और जघन्य उभयपक्षीय प्रभु-हिलोर की प्रखर अनुभूति का स्मरण-अभ्यास अवरुद्ध आंतरिक रस-स्रोत को पुनः मुक्त करता है। इन गहरे प्रेम स्रोतों का प्रांजल-प्रवाह संपूर्ण परिवेश में सरसता, सामंजस्य तथा प्रफुल्लता की वृद्धि करता है। सच्चा प्रेमी—सच्चा

भक्त मात्र ईश्वरीय ध्यान-छवि को प्यार नहीं करता, अपितु—ब्रह्मांड में संव्याप्त ईश्वरीय सत्ता से—प्राणिमात्र से—अनन्य आत्मीयता भरा प्रेम संबंध स्थापित कर लेता है। यह तादात्म्य भावना पग-पग पर करुणा, उदारता, सद्भाव, सहृदयता, सहानुभूति, सेवा, सज्जनता के रूप में कार्यरूप में प्रकट परिणत होती रहती है। ईश्वर भक्त परिग्रही या स्वार्थी कैसे हो सकता है ? उसके लिए तो एक ही मार्ग है—अपनी समस्त उपलब्धियों को विश्व मानव के चरणों में व्यवहारतः समर्पित कर देना। इससे कम में कभी भी ईश्वरीय अनुकंपा प्राप्त भी नहीं हो सकती। लोकमंगल में अपना सर्वस्व समर्पण करने वाला परमार्थ परायण व्यक्ति ही सच्चा ईश्वर भक्त कहा जा सकता है। अपने परिवार का पालन भी वह इसी भावभूमि के आधार पर ही करता है। सभी लोगों के साथ उसके व्यवहार का भी यही आधार होता है। वासना-तृष्णा से सर्वथा रहित, निर्मल-निश्चिंत अंतःकरण वाला व्यक्ति ही भक्ति योग का अधिकारी है। शबरी, मीरा, सूर, तुलसी आदि भक्तों ने तथा सभी ऋषि-मुनियों ने इसी भावभूमि पर पहुँचकर ईश्वर दर्शन—आत्म साक्षात्कार का परमानंद प्राप्त किया था और सभी दूसरों के लिए भी वही राजमार्ग खुला है।

बनियान-कुर्ता-जाकेट पहने हुए कोई भी व्यक्ति अपना शरीर नहीं देख सकता। आत्मा भी इसी तरह तीन आवरणों में बंद है। इन आवरणों को खोलने के लिए जप, तप, ध्यान, मुद्रा, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि का इतना विशाल क्षेत्र खड़ा कर दिया है कि प्रत्येक स्थिति का व्यक्ति, हर परिस्थिति और वातावरण का निवासी उनमें से अपने अनुकूल साधना-विधान चयन कर आत्म-प्रभूति के मार्ग में चल पड़ सकता है, तो भी साधना का मार्ग अति दुष्कर है। इसे समर अर्थात् युद्ध की संज्ञा दी गई है। युद्ध में लोग विजयी ही नहीं होते, पराजित भी होते और मृत्यु के घाट भी उतर जाते हैं; अतः योद्धागण आत्म सुरक्षा की ढाल लेकर ही मैदान में उतरते हैं। अपने अनुसार

साधना-उपासना का निर्धारण हर किसी से संभव नहीं होता। अतएव योग्य मार्ग दर्शन की आवश्यकता पड़ती है, जो समय-समय पर उस मार्ग में आने वाली अड़चनों का समाधान करते रहें, जिन्हें इस तरह का सुयोग मिल जाये उन्हें मनुष्य शरीर देने के बाद इसे परमात्मा का दूसरा अनुग्रह समझना चाहिए।

किंतु सामान्यतः योग्य मार्गदर्शन का मिलना कठिन कार्य है। इस युग में तो धर्म के नाम पर सिवाय जन श्रद्धा के दोहन और साधनाओं के नाम पर एक-दो आसन प्राणायाम सिखाकर जिज्ञासु साधक का धन हड़प लेने की युक्ति ही योग साधना स्थलों में दिखाई देती है। इन दुर्भाग्यों से बचाने के लिए ही ब्रह्मवर्चस की स्थापना की गई है। समय-समय पर यहाँ आत्म बोध की साधनाओं का प्रशिक्षण चलता रहता है, किंतु वह हर व्यक्ति के लिए सुलभ हो यह आवश्यक नहीं। इसी कारण इन पंक्तियों में नितांत सरल और सुविधाजनक आत्म बोध साधना दी गई थी। यह साधारण दीखने वाली आत्म बोध साधना वस्तुतः यदि सच्चे मन से कर ली जाये तो उतने से ही लोग अंतरंग की अनुभूति कर सकते और मनुष्य जीवन की सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।

कर्मयोग द्वारा स्थूल शरीर का परिष्कार, ज्ञान योग द्वारा सूक्ष्म की अनुभूति करते हुए भक्ति योग द्वारा श्रद्धा और निष्ठा विकसित कर हर कोई कारण शरीर आत्मा का अंतर्दर्शन कर सकता है। उस स्थिति में मिलने वाली शांति, प्रसन्नता, आत्मबल और आत्म विभूति की तुलना में संसार में बड़े से बड़े भौतिक सुख तुच्छ ही ठहरते हैं। हम शरीर नहीं आत्मा हैं, शरीर को ही सब कुछ न मानें, आत्मा को भी भूलें नहीं, इसी में अपना समाज और समूची मानवता का कल्याण सन्निहित है।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)